सोलहवी सदी मे राजस्थान

अथवा

मुँशी देवीप्रसाद कृत 'ऐतिहासिक चरित्र-माला'

मनोहरसिंह राणावत

मूल्य— पच्चास रुपये

प्रथम संस्करण -१९७७ ई०

प्रकाशक —
मनोहर प्रकाशन
C/o हाथ करघा वस्त्र सेंटर
मदार गेट के अन्दर
अजमेर (राजस्थान)

मुद्रण
शर्मा प्रिन्टर्स पुराना मण्डी अजमेर

उसक चतुःशती समारोह के

सुअवसर पर

हल्दीघाटी के युद्ध की स्मृति को

समर्पित

विषय-सूची

वक्तव्य

राजस्थान के विभिन्न राज्यों के कई एक सुनाम धीरवीर राजाओं की जो जीवनियाँ मुंशी देवीप्रसाद ने लिख कर प्रकाशित की थीं, उनके सम्बन्ध में उसने स्वयं विज्ञापित किया कि ये जीवन चरित्र बड़ी मेहनत और तहकीकात से हिन्दी फारसी और अंग्रेजी इतिहास ग्रंथों की मदद लेकर लिखे गये थे। स्पष्टतया उसने राजस्थानी में तब उसे सुलभ विभिन्न वंशावलियों अथवा ख्यातों को भी देखभाल कर उनका भरसक उपयोग किया था। परन्तु मुंशी देवीप्रसाद मूलतः फारसी का अधिकारी विद्वान् था अतः राजस्थान के अधिकांश इतिहासकारों ने फारसी ग्रंथों में प्राप्य सामग्री के संकलन के रूप में ही उसकी रचनाओं का प्रायः उपयोग किया है। उसकी लिखी इन जीवनियों में सुलभ इतर जानकारी की ओर तब समुचित ध्यान नहीं दिया गया। यही नहीं उसकी लिखी ये छोटी-छोटी जीवनियाँ अधिकतर उपेक्षित हो रही हैं। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगा कि आज के अनेक वरिष्ठ इतिहासकार उनके बारे में सर्वथा अनभिज्ञ ही हैं।

ये जीवनियां सन् १८८९ ई० से ही प्रकाशित होने लगी थी। चित्रमाला के अंतर्गत प्रत्येक शासक के संबंध में अलग अलग एक छोटी पुस्तिका प्रकाशित की जाने लगी जिसमें उस शासक के रेखाचित्र के साथ उसकी यथासंभव संक्षिप्त प्रामाणिक जीवनी होनी थी। सन् १८९० ई० में इन जीवनियों का प्रकाशन प्रसिद्ध चित्रावली नामक मासिक के अंतर्गत होने लगा। प्रत्येक अंक में ३२ से ४० पृष्ठ होते थे। जीवन चरित्र क्रमशः छपते जाते थे जो उक्त मासिक प्रकाशन के ग्राहकों को पहुंच जाते थे। उन्हें बाद में अलग-अलग जीवन चरित्र अथवा जीवन चरित्र संग्रह के रूप में सिलवा लिया जाता था। विभिन्न जीवन-चरित्र स्फुट प्रकाशन के रूप में भी बाद में सुलभ होते थे। यह क्रम लगभग सन् १८९४ ई० तक चलता रहा। इन जीवन चरित्रों का पहिला संस्करण प्राय ५०० प्रतियों का छपता था। इनमें से किसी का भी दूसरा संस्करण तब छापा गया हो ऐसी कोई जानकारी नहीं मिलती है। इन प्रकाशनों के कई तो वार्षिक या स्थायी ग्राहक होते थे। तब एक आने से चार आने तक के मूल्य के ये जीवन-चरित्र कुछ ही वर्षों में बिक जाने के कारण तदुपरान्त अप्राप्य हो गये होंगे।

यों मारवाड़ के राजाओं की ख्यात में मुंशी देवीप्रसाद ने राव टीडा तक के मारवाड़ के प्रारंभिक शासकों के विवरण संकलित कर दिये थे। इसके अतिरिक्त मारवाड़ के राव मालदेव और जोधपुर के बड़े महाराजा जसवन्तसिंह के जीवन चरित्र उसने प्रकाशित करवाये। आमेर (जयपुर) के राजा पृथ्वीराज से भगवतदास तक का इतिहास और आमेर के महाराज मानसिंह का जीवन-चरित्र भी तब छपवाए थे। मेवाड़ के महाराणा सांगा से लेकर महाराणा प्रताप तक के सब ही शासकों की जीवनियां भी इसी क्रम में प्रकाशित की गई। बीकानेर राजघराने के भी राव बीका से लेकर राव कल्याणमल तक के सब ही शासकों के जीवन चरित्र छपवाए गये। राजस्थान के अन्य किसी राज्य के शासकों के और भी कोई जीवन चरित्र मुंशी देवीप्रसाद ने प्रकाशित किये हों तो उनके बारे में कोई जानकारी सुलभ नहीं हुई है।

इन पिछले ८५ या अधिक वर्षों में राजस्थान में ऐतिहासिक शोध का बहुत काम हुआ है तथा अत्यधिक नई महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक आधार सामग्री

प्रकाश म आई है। तथापि मु शी देवीप्रसाद द्वारा लिखे गये उन एतिहासिक जीवन-चरित्रो का अपना महत्त्व है। तब उसे व्यक्तिगत रूपेण नात या सहज सुलभ जानकारी के सदभ म व भी अब अध्ययनीय आधार-सामग्री बन गये हैं। अत यथा साध्य उन सबको सग्रहीत कर उनका सुसपादित सस्करण प्रकाशित करने की योजना को कार्यान्वित करने म मैंने पूरा सहयोग भी दिया।

आज मु शी देवीप्रसाद रचित उन जीवनिया क उस प्रथम और सभवत एक मात्र सस्करण की प्रतिया इतनी दुर्लभ हो गई हैं कि निरतर खोज और भरसक प्रयत्न करने पर भी कुछ जीवनियाँ अब तक प्राप्त नही नही हो पाई हैं। उनको प्राप्त करने तक उनम स अधिकाश जीवन चरित्रा के इस सग्रह का प्रकाशन स्थगित कर दना किसी प्रकार उचित नही जान पडा। अत जो भी जीवनिया मिल सकी हैं उन्हे ही इस सग्रह म प्रकाशित किया जा रहा है।

इस सग्रह के प्रकाशन से कई एक महत्त्वपूर्ण परन्तु अब तक अज्ञात पहलुओ पर अवश्य ही कुछ उपयोगी प्रकाश पड सकेगा ऐसा विश्वास है। डा० गौरीशकर हीराचद ओझा के लेख कछवाहा के इतिहास म एक उलझन का पढन से यह अनुमान होता है कि मु शी देवीप्रसाद कृत राजा भारमल' म दी गई जानकारी की ओर उनका ध्यान नही गया था। आईन-इ अकबरी म राजा भगवन्तदास (अ० अ० १ पृ० ३५३) क साथ ही बाका कछवाहा' (अ० अ० १ पृ० ५५५) का भी उल्लेख ह। अकबर नामा (अ० अ०, ३, पृ० ५१९) म काबुल म उसकी कार्यवाही का विवरण लिखते हुए उसका सही नाम भगवानदास ही दिया है। जब निर्विवाद रूप से यह स्पष्ट हो गया है कि आम्बेर का राजा भगवतदास' और लवाण का राजा भगवान' दास एक ही बाप के य दो सगे बेटे सवथा दो विभिन्न व्यक्ति थ तब यह अत्यावश्यक हो गया है कि वतनी की विभिन्नता के आधार पर अकबर नामा क मूल फारसी पाठ का सहायता स उन दोनो व्यक्तियो की विभिन्न जीवनिया के अलग-अलग ब्यौरे तयार किय जावें तथा अन्य आधार सामग्री का सहायता से नक्ल नवीसो के द्वारा फारसी वतनी की भूलो को भी सुधारने का प्रयत्न किया जाव। इसी के आधार पर नणसी की ख्यात (प्रतिष्ठान० १ पृ० २९७) म दी गई दूसरी वशावली के विवरण म एक मात्र भूल राजा भगवानदास

ग्रावर टीकाई' को भी सुधारा जा सकता है और पश्चात्कालीन जोधपुर की ख्यात में हुई ऐसी भूलों को सुधार दिया जाकर उसे पूर्णतया प्रामाणिक बनाया जाना चाहिये।

मेरा विश्वास है कि मुंशी देवीप्रसाद कृत ऐतिहासिक जीवन चरित्र संग्रह का यह संशोधित सुसम्पादित संस्करण राजस्थान के इतिहास पर शोध करने वालों को उपयोगी और सहायक प्रमाणित होगा। भरसक प्रयत्न किया जा रहा है कि मुंशी देवीप्रसाद कृत बाकी रहे ऐसे ही ऐतिहासिक जीवन-चरित्रों को प्राप्त कर उनका भी संशोधित सुसम्पादित संग्रह इसी के दूसरे *भाग के रूप में प्रकाशित किया जावे। देखें! कब तक वह सुयोग आता है।* पुरानी पुस्तकों के जिन संग्राहकों के पास उनकी प्रतियाँ हैं, क्या वे इस संदर्भ में हमें सहयोग देने की कृपा करेंगे?

"रघुबीर निवास"
सीतामऊ (मालवा)
जून १८, १९७७ ई०

रघुबीरसिंह

अपनी बात

मु शी देवीप्रसाद की विस्तृत जीवनी उनके लिखे 'शाहजहाँनामा' के नय सस्करण म दी जा चुकी है।[1] अत यहा उसका सक्षिप्त उल्लेख कर दना ही पर्याप्त होगा। मु शी देवीप्रसाद का जन्म सन् १८४८ ई० मे हुआ था। सन् १८७९ ई० म जोधपुर राज्य की सवा मे नियुक्त हुआ और तन्नन्तर जीवन पर्यन्त जोधपुर म ही रहा था। वह अरबी फारसी और उर्दू का ज्ञाता था। राजस्थानी और हिन्दी भी जानता था। उसने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष साहित्य-साधना मे ही बिताए थे। भारत और राजस्थान के इतिहास सबन्धी लगभग पचास ग्र थ और कई सौ लख उसन लिखे थे। उसने कई फारसी ग्र थो का तब प्रचलित हिन्दी म अनुवाद कर हुमायू नामा, शाहजहानामा, औरगजेबनामा आदि ग्र थो की रचना कर मुगल बादशाही

१ 'शाहजहानामा डा० रघुबीरसिंह और मनोहरसिंह राणावत द्वारा सम्पादित पृ० ७ १२ प्रकाशक मकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड १९७५ ई०।

के जीवन चरित्रो पर पूरा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया। परन्तु राजस्थान के इतिहास के प्रति उसकी विशेष रुचि थी एव मुगल सम्राटो के इन जीवन-चरित्रो म भी उसने राजस्थान सबधी जानकारी की ओर विशेष ध्यान दिया। साथ ही उसने राजस्थान सबन्धी कई पुस्तकें और राजपूत राजाओ के जीवन चरित्र सबधी लेख लिख कर प्रकाशित करवाये उसके द्वारा रचित ग्रन्थो एव विभिन्न राजपूत शासको के जीवन चरित्र सबन्धी इन विवरणो को गौरीशकर हीराचन्द ओझा से लेकर अब तक राजस्थान इतिहास पर शोध करने वाले प्राय सब ही सशोधक आधार-सामग्री के रूप म उनका उपयोग करते रहे है।

स्नातकोत्तर परीक्षा देने के बाद जून १९७१ ई० से ही सीतामऊ आकर महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह के विशाल और बहुमूल्य ग्रन्थालय श्री रघुबीर लायब्रेरी सीतामऊ म पर्याप्त समय तक रह कर मुन्शी देवीप्रसाद के ग्रन्थो एव लेखो का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय ही मुन्शी देवीप्रसाद द्वारा रचित विभिन्न उपलब्ध ग्रन्थो एव लेखो का अध्ययन कर उनकी उपादेयता को जाना था। तभी यह निश्चय किया था कि उस विद्वान् की अप्राप्य और महत्त्वपूर्ण कृतियो को पुन विद्वानो और इतिहास प्रेमियो के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिये।

परन्तु कई एक कारणो से तत्काल मुन्शी देवीप्रसाद के ग्रन्थो लेखो के सग्रह सपादन का काम हाथ मे नही ले सका। १९७३ ७४ ई० म उक्त कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ और सवप्रथम मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक बहुत बनी कमी की पूर्ति करने के लिये मुन्शी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा के सपादन का काम हाथ म लिया। तदनन्तर परिस्थितिवश वह काम आगे नही बढ सका था। मार्च १९७५ म यहा श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ म मेरी नियुक्ति हो गयी। इतिहास के प्रति जीवन समर्पित करने और अपने गुरु की आज्ञा का पालन कर जब सस्थान म आ गया तब उस अपूर्ण कार्य को पूरा करने का निश्चय किया। मुन्शी देवीप्रसाद कृत राजस्थान के विभिन्न राजाओ के सक्षिप्त जीवन चरित्रो को सग्रहीत कर उनका सपादित सस्करण तयार करने मे जुट गया।

मुन्शी देवीप्रसाद द्वारा लिखित राजस्थान के अधिकाश राजाओ के

जीवन-चरित्र तो मुझे श्री रघुवीर लायब्रेरी (श्री नटनागर शोध संस्थान) में ही उपलब्ध हो गये थे। परन्तु मैं यथासंभव ऐसी सभी जीवनियों का संग्रहीत करना चाहता था। राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी, के सहायक निदेशक श्री सौभाग्यसिंह शेखावत के पास संग्रहीत कछवाहा राजाओं के जीवन चरित्र भी प्राप्त हो गये। महाराजा जसवंतसिंह का जीवन-चरित्र के कुछ पृष्ठ सुलभ नहीं होने के कारण उसे इस संग्रह में सम्मिलित नहीं किया जा सका। इसी प्रकार कुछ अन्य राजाओं के जीवन-चरित्र भी प्राप्त नहीं हो सके वरना उनको भी अवश्य ही इसमें सम्मिलित किया जाता। परन्तु अब भी प्रयत्नशील हूं कि उन रहे-सहे जीवन-चरित्रों को भी प्राप्त कर लिया जावे जिससे वे भी पाठकों को सुलभ हो सकें।

मुंशी देवीप्रसाद ने राजस्थान के अनेक वीरों की जीवनियां संक्षिप्त किंतु यथासंभव प्रामाणिक हिन्दी उर्दू में लिख कर ईसा की १९ वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में प्रकाशित की थी। तब तक राजस्थान में अवश्य ही हिन्दी की स्वतंत्र सुनिश्चित शैली का पूरा विकास नहीं हुआ था। अतः उसकी लेखन शैली में फारसी-उर्दू का ही सर्वाधिक प्रभाव था। उसकी देवनागरी में लिखी हिन्दी में भी तब प्रचलित फारसी उर्दू शब्दों का ही बाहुल्य है। आज के पाठकों को यह मिश्रण अटपटा ही जान पड़ता है। अतः इस संशोधित संस्करण को तयार करते समय इस बात को ध्यान में रख कर भाषा को सरल और सुबोध बनाने के लिये अनेक शब्दों का फेर-बदल कर दिया गया है। मुंशी देवीप्रसाद ने अनेक स्थानों पर फारसी ग्रंथों में दी गई हिजरी तारीखों को विक्रमी सम्वत् और तिथियों में परिवर्तित कर उन्हें भी लिख दिया है जो चंडू पंचांगों के आधार पर बनाई गई जंत्री के आधार पर ही थी। अतः उन तिथियों में कहीं कहीं पर एक दो दिन का अन्तर पड़ जाता है। इण्डियन एफीमेरिज के आधार पर उक्त अंतर को भी प्रस्तुत संस्करण में दूर कर दिया गया है। साथ ही विक्रमी संवत् और तिथियों के सही ईसवी सन्, तारीख और वार भी दे दिये गये हैं। तब तक ऐतिहासिक शोध में समुचित प्रगति नहीं हुई थी जिससे मुंशी देवीप्रसाद ने यदा कदा अमान्य और अप्रमाणिक घटनाओं को भी लिख दिया है अतः उनके संबंध में पाद टिप्पणियां देकर उक्त पुस्तक को यथासंभव प्रामाणिक बना देने का प्रयत्न किया गया है। इसके अतिरिक्त हल्दीघाटी के युद्ध की सही तारीख के संबंध में अब तक चले आ रहे विवाद को समाप्त करने के लिये

अपने शोध लेख 'हल्दीघाटा के युद्ध की सही तिथि तारीख' को परिशिष्ट म दे दिया गया है।

यह सम्पूर्ण कार्य महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह की देख रेख म ही पूरा हुआ है। अत इसका पूरा श्रेय उन्ह ही है। साथ ही डा० शिवदत्तदान बारहठ के प्रति भी मैं विशेष कृतज्ञ हू। संशोधित संस्करण को तयार करने म सहयोगी के रूप म उन्हाने मुझे पूरा पूरा सहयोग दिया है। विक्रम सम्वत् और तिथियो को ईसवी सन् और तारीखो म परिवर्तित करने तथा भाषा को सरल और सुबोध बनाने का भी अधिकाश परिश्रमपूर्ण कार्य उन्होने किया है। अत इस पुस्तक की प्रेस कापी जल्दी तयार कर पाया। श्री नटनागर शोध-संस्थान के वरिष्ट शोध सहायक श्री सुरेशचन्द्र पत्रिया ने भी प्रेस कापी तयार करने मे सहयोग दिया है। अत उनका भी आभारी हू। इस पुस्तक को इस सुचारु रूप म छाप देने के लिये मैं श्री शर्मा प्रिन्टस अजमेर, का भी कृतज्ञ हू।

यदि इस सग्रह ग्रथ क प्रकाशन से राजस्थान क इतिहास सबधी अध्ययन और शोध म यत्किंचित् भी सहयोग दे पाया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझू गा।

रघुबीर निवास
सीतामऊ (मालवा)
जून १८, १९७७ ई०

मनोहरसिंह राणावत

—

मेवाड़

(१) महाराणा सांगा[1]

महाराणा रायमल के तीन बेटे पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह (सांगा) थे। इनका एक चचेरा भाई सूरजमल था। उसको महाराणा ने निकाल दिया था। और वह पहाड़ों में रह कर लूटमार करता था। गुजरात में एक औरत, जो बड़ी करामात वाली थी, गंगाजी की यात्रा के लिये जा रही थी। उसके पास अच्छी अच्छी घोड़ियां थीं। उन घोड़ियों को चुराने के लिये सूरजमल ने भालों को भेजा परन्तु वे अंधे हो गये और जब उन्होंने क्षमा याचना की तो उनकी आंखें पुनः खुल गयीं। यह बात अविलम्ब सर्वत्र फैल गयी। तब एक ओर से सूरजमल और दूसरी ओर से वे तीनों भाई (पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह) उसके दर्शनार्थ गये। उसने कहा 'आओ बैठो'। संग्रामसिंह तो हाथ जोड़ कर गलीचे पर उसकी गद्दी के पास बैठ गया। सूरजमल जाजम के किनारे पर बैठा। पृथ्वीराज और जयमल घोड़ों

---

१ मेवाड़ के सुप्रसिद्ध प्रतापी महाराणा श्री सांगा जी का जीवन चरित्र' संवत् १९५० वि०।

श्रोर रथा को देखन उठ कर चल गय । उस औरत न उन सब के लिय खाना तैयार करवाया । जब खान का थाल आया तो चारा चाचा भतीज खान का बठे । सब न शामिल खाया । वहा स रवाना होत समय उसन सूरजमल स कहा कि— तुम चाचा भतीज आपस म झगडाग । सागा मवाड का मालिक होगा, क्योकि यह बिछान पर गद्दी के सामन बठा रहा । पृथ्वीराज और जयमल कु वरपद म ही मर जावगे क्योकि व उठ गय थ और सूरजमल जाजम के किनार पर बठा अत वह मेवाड के एक कोन पर रहगा ।

यह कह कर वह तो चली गई । उसक जान क बाद वहा पर भाइयो म राज्य के लिय झगडा प्रारम्भ हो गया । इस कारण सागा का वतन छोडना पडा । वह गुजरात और आम्बेर वगरह म बहुत दिनो तक घूमता फिरता रहा और इस हालत म जमान का हाल खूब गौर स दखा और अनुभव भी प्राप्त किया । मवाड म उसके दोनो भाई झगडा म मार गय । सूरजमल ने मेवाड के पूर्वी किनार पर दवलिया नामक गाव बसा कर अपना राज्य अलग स्थापित किया जो अब दवलिया-प्रतापगढ[1] क नाम स प्रसिद्ध है ।

सागा यह खबर सुन कर चित्तौड म वापस लौट आया । महाराणा रायमल न उस अपना उत्तराधिकारी थापित कर दिया ।

सम्वत् १५६५[2] म महाराणा रायमल की मृत्यु हो गया । उसकी मृत्यु क बाद सागा चित्तौड की गद्दी पर बठा । उसक समय म मवाड का राज्य खूब चमका और दरबार की शोभा बढी । कवियो न कहा है कि उस समय म चित्तौड अतुल प्रताप और उग्र तज का एक ऊचा शिखर था जिसका शोभायमान कलश हिंदूपति महाराणा सागा था ।

उसके समय म हिंदुस्थान म अनक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गय थ । अत अलग अलग हाकिम लोग बादशाह बन बठे थ । एसे बादशाह गुजरात

---

१ सूरजमल - उसक प्रपौत्र बीका न ही आग चल कर दवलिया (प्रतापगढ) राज्य की स्थापना की थी । (स०)।

२ नणसी क अनुसार ज्येष्ठ सुदि ५ १५६६ वि० तदनुसार मई २४ १५०९ ई । (स०)।

ग्रार मालवा के, मेवाड के पडोस म भी थे । वे मेवाड को जीतने के लिये एक भी हो गये थ तो भी मेवाड का कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि महाराणा पूर्ण व्यवस्था के साथ हर समय तैयार रहता था । कहते हैं कि महाराणा ने १८ लडाइया म दिल्ली मालवा और गुजरात की सेना पर फतह पायी थी ।

उस वक्त मदनीराय मालवा के बादशाह महमूद खिलजी का वजीर था । उसने बडे परिश्रम स अपने स्वामी का अधिकार सम्पूर्ण राज्य म जमाया था । परन्तु महमूद खिलजी धार्मिक कारण स ईर्ष्या रखता था और उसक बढते हुए प्रभाव को समाप्त करना चाहता था । अत सम्वत् १५७४ म वह माडू म अकेला भाग कर गुजरात के शासक सुलतान मुजफ्फर के पास गया और उसकी फौज मेदनीराय पर चढा लाया । मदनीराय ने महाराणा के पास आकर सहायता मागी । महाराणा मेदनीराय की सहायताथ सारगपुर तक पहुँचा । वहा माडू का किलेदार हमकरण[1] मुजफ्फर से लडाई हार कर आया । महाराणा उस समय तो दोनो को साथ लेकर पुन चित्तौड लौट आया । बाद म मना भेज कर मेदनीराय को चदेरी और हमकरण को गागरोन के किले पर अधिकार दिला दिया । इस पर महमूद खिलजी ने अपनी और गुजरात की सेना साथ लेकर उसी वष गागरोन और चदेरी पर चढाई कर दी । हमकरण पराजित होकर बदी बना लिया गया और बाद म उसकी हत्या कर दी गयी । मेदनीराय न भेंट-उपहार भज कर महाराणा को अपना सहायताथ आमन्त्रित किया । महमूद खिलजी न महाराणा का मुकाबला किया और कुछ ही समय म उसके (महमूद खिलजी) ३२ सरदार और बहुत स आदमी और ५०० गुजराती अपने अधिकारियो के साथ मार गये । महमूद खिलजी घायल हो गया और बदी बना लिया गया ।[2] महाराणा न दया कर उसको सम्मान के साथ रखा और जख्मो का इलाज करवाया । जब वह चगा हो गया तो एक हजार व्यक्ति के साथ उसको पुन माडू भज दिया । परन्तु उसके दादा होशगशाह की जडाऊ पेटी और टोपी जो बहुमूल्य थी वापस नहीं लौटायी । इसके साथ ही रणथभोर गागरोन कालपी और भेलसा के किले भी ले लिये । इसी तरह अजमेर

१ मारात इ सिकन्दरी म 'भीमकरण' लिखा है । (स०)।

२ १५१९ ई० की घटना है । (स०)।

और आबू म भी अपने थान बठा कर आम्बेर मारवाड बूदी और ग्वालियर के राजाओं का अपन प्रभाव मे किय ।

सवत् १५७५ (१५१९ ई०) म महाराणा न इडर क राव रायमल की सहायताथ, जिसको गुजरात के सुलतान मुजफ्फर ने निकाल दिया था गुजरात पर चढाई की और गुजराती अधिकारियो को ईडर से भगा कर बहुत सा क्षेत्र गुजरात का अहमदाबाद क पास तक लूट लिया । सुल्तान मुजफ्फर अहमदाबाद म बठा रहा। सामना करन के लिय नहा आया । दूसरे वर्ष[1] उसन १ २५,००० की सना चित्तौड पर अधिकार करन के लिय भेजी । महाराणा भी सामना करने क लिय आग बढा और मदसौर पहुँचा । उस वक्त महमूद खिलजी भी गुजरातियो की मदद को गया था । लकिन गुजराती फिर टाला देकर चले गये ।

सवत् १५८१ (१५२५ ई०) म सुल्तान मुजफ्फर का बडा बहादुर अपन पिता से और सम्वत् १५८२ (१५२६ ई०) म बहादुर का भाई महमूद बहादुर से जब कि बहादुर गुजरात का बादशाह हो गया था अप्रसन्न होकर मेवाड मे आया । महाराणा ने उन दोनो को अपन यहा शरण दी और बडे लाड-प्यार से अपने पास रक्खा ।

उस वक्त महाराणा का प्रताप खूब बढा हुआ था । सब राजपूत उसकी प्रशसा करते थे और उसका हुक्म तन मन स मानत थ । जब कोई लडाई आ पडती थी तो ८० ००० सवार, ७ बडे राजा ९ राव १०४ छोटे रईस और ५०० जगी हाथी उसके साथ रण म जात थ । यो वह हिदुओ का जोर बहुत बढा चुका था । यदि उस वक्त (१५२७ ई०) म बाबर बादशाह हिदुस्तान पर हमला करके मुसलमानो की घटी हुई हिम्मत को न बढा देता तो हिदूपति महाराणा सग्रामसिंह चक्रवर्ती होकर दिल्ली क तख्त को चित्तौड म ले आता ।

सम्वत् १५८३ (१५२७ ई०) म महाराणा न बाबर बादशाह क ऊपर चढाई की । जिसका स्वप्न म भी अनुमान बादशाह को नहा था क्योकि वह जब काबुल म था तब महाराणा न दिल्ली क सुलतान म शत्रुता

१ १५२० ई० । (स०)।

छीन के कारण, उसके पास वकील भेज कर यह कौल किया था कि 'जो आप दिल्ली के ऊपर धावा करोगे तो मैं आगरे पर हमला करूंगा।" मगर जब बाबर ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी को मार कर सल्तनत छीन ली तो महाराणा को जो अन्देशा दिल्ली वालों से था वही मुगलों से भी हो गई। और ज्यों ही दिल्ली के शाहजादे अमीर और दूसरे भाग हुए लोग उसके शरण आये, तब तो राणा सांगा ने एक बडी फौज राजपूतों और पठानों की लेकर बादशाह के ऊपर चढाई कर दी और बयाना को फतह करके उसकी सेना के अगले हिस्से को भगा दिया। इस लडाई में उसके साथ जो राजा रईस और शाहजादे थे उनका वर्णन इस प्रकार है—

१ रायसेन का राजा सलहदी ३०,००० सवार से।

२ डूंगरपुर का रावल उदयसिंह १२,००० से।

३ मेदनीराय चन्देरी का मालिक ३,००० से।

४ हसन खां मवाती १२,००० से।

५ शाहजादा महमूद खां लोदी १०,००० से।

६ बूंदी का राव नरवद ७,००० से।

७ काछी सतरवा (?) ६,००० से।

८ इडर का राव भारमल ४,००० से।

९ मेडता का राव वीरमदेव ४,००० से।

१० वरसिंह देव चौहान ४,००० से।

मुगलों के दल पर राजपूतों का ऐसा खौफ बढ गया था कि बाबर बादशाह ने खुद अपनी जीवनी बाबर नामा में लिखा है कि किसी में भी इतना साहस नहीं रहा था जो बहादुरी की कोई बात मुंह से निकालता। यह कहना तो बहुत दूर था कि आगे बढ कर तलवार मारे।

बादशाह दो महीने तक मोरचा में बैठा रहा और सलहदी तंवर को बीच में डाल कर यह बात चाही कि महाराणा बयाने तक अपनी सीमा रखें और दिल्ली आगरा उसके पास छोड दें। महाराणा ने स्वीकार नहीं किया। तब बाबर बादशाह ने अपनी सेना में उत्साह बढा कर तोपखाना

आग बरसाया। राजपूत तोपों तक लड़ते चले गये और वहां से बढ़कर अंदर घुस पड़े। सलहदी तंवर उस समय धोखा देकर बाबर में जा मिला। उसके जाते ही राजपूतों की हिम्मत टूट गई। महाराणा जो कुछ देर पहिले जीत में थे अब लड़ाई हार कर पीछे हटे और उसके बड़े-बड़े सरदार वहीं कट मरे।

महाराणा यह कह कर कि फतह किये बिना चित्तौड़ नहीं जाऊंगा मेवाड़ के पहाड़ों में चला गया।

सम्वत् १५८४ (१५२८ ई०) में बाबर बादशाह ने मेदनीराय चौहान के ऊपर जो महाराणा की मदद से चंदेरी में राज्य करता था चढ़ाई की। मेदनीराय खूब लड़ा और बहादुरी के साथ मारा गया। महाराणा ने यह खबर सुनकर पुनः अपनी सेना तैयार की और मालवा की तरफ इस उद्देश्य से रवाना हुआ कि अपने दुश्मन को चंदेरी से पीछा जाता हुआ रास्ते में ही घेर कर मार ले। परंतु उसकी आयु ने साथ नहीं दिया और वह मुकाम एरिच से बीमार हो कर पीछे लौटा और मार्ग में हो जाने देकर अपना वह वचन निभा दिया कि मैं फतह किये बिना चित्तौड़ को नहीं जाऊंगा।

इस महाराणा का बदन मजबूत कद मझोला और चेहरा खूबसूरत था। आंखें बड़ी बड़ी थीं। मरते वक्त उसके बदन के जख्मों से सिद्ध हुआ कि वह एक वीर योद्धा था क्योंकि उसकी एक आंख तो भाइयों से झगड़े में जाती रही थी। एक हाथ दिल्ली के लोदी बादशाह की लड़ाई में कट गया था। ऐसे ही एक पैर एक और लड़ाई में गोली से टूट गया था और पूरे शरीर पर ८० घाव तीर तलवार भाले और बरछों के लगे थे।

बाबर बादशाह की आत्म कथा बाबर नामा में महाराणा की लियाकत और बहादुरी की बहुत सी प्रशंसा देखने में आती है। बाबर ने लिखा है कि महाराणा अपने पौरुष और तलवार के बल पर बहुत शक्तिशाली हो गया था और तब महाराणा के आधीन राज्य की आय दस करोड़ थी। राजस्थानी आधार ग्रंथों में ६ करोड़ की आय लिखी है। बाबर ने दूसरी बार आक्रमण नहीं किया और न ही पीछा किया। इसमें पाया जाता है कि वह महाराणा को छेड़ना नहीं चाहता था और फिर उसका यह कहना कि राणा का पीछा करने में हमसे गफलत हुई। महाराणा की इज्जत और

शान को बटाता है। उसके तीन पुत्र रतनसिंह, विक्रमाजीत और उदयसिंह बारी बारी से उसके पीछे गद्दी पर बठे।

महाराणा सग्रामसिंह का जीवन जिस तरह से व्यतीत हुआ और जो परिस्थितियाँ उसके समक्ष उपस्थित हुई उनमें से कुछ का तो वर्णन पहिले किया जा चुका है। अब कुछ ऐसी बातें भी लिखी जाती है कि जिनसे उसके शील स्वभाव की झलक भी नजर आ जावे।

सबसे पहिले हम उनके गुण मानने और उसका बदला भर देने का एक उदाहरण लिखते है जो निहायत अनोखा है। इसमें उनकी सद् इच्छा और दयालुता पाई जाती है। वह यह है कि जिस जमाने में हिन्दूपति को पिता की अप्रसन्नता और भाई की वमनस्यता के कारण मेवाड छोडना पडा। उस समय उसके वतन में एक वृक्ष की छाया के नीचे कुछ देर के लिये ठहरना भी मंजूर नही था। अपनी विपत्ति के दिन व्यतीत करने के लिये मेवाड के बाहर इधर उधर छिपे फिरता था। एक दिन गाव अवासर इलाके बदनोर में भी जा निकला। उस गाव के बाहर एक बावडी कुए के ऊपर घोडे से उत्तर कर पीपल के नीचे सो गया। सेवक घोडा बाध कर गाव में कुछ सामान खरीदने गया। इधर एक साप आया और महाराणा के ऊपर फन करके खडा हो गया और उस पर एक चिडिया बठ कर बोलने लगी। उस गाव के स्वामी पवार करमचंद ने अपने बाग में से इस आश्चर्यजनक घटना को देखा तो उसको बडा आश्चर्य हुआ। वह अपने दिल में कहने लगा यह तो कोई बडे भाग्य वाला सो रहा है। इसके सिर पर चंवर उडना और छतर घूमना चाहिये। इतने में सेवक आ गया। उससे करमचंद ने पूछा कि सोने वाला कौन सरदार है? उसने कहा कि महाराणा रायमल जी के कुवर सागाजी है। महाराणा तो वृद्ध हो गये और राज्य का स्वामी इनका बडा भाई पृथ्वीराज है। वह इनसे राजी नही है। यहाँ तक कि इनको अपने अधिकार क्षेत्र में पानी भी नही पीने देता।

यह सब सुन कर करमचंद सागा के पास आया और जब हिन्दूपति की आंख खुली तो उसके चरणों में गिर पडा और अपना नाम बताकर उसको घर ले गया। बहुत अधिक आग्रह करके चार पाच दिन तक रक्खा और उस सुगन की बात कह कर निवेदन किया कि आपको जल्दी ही चित्तौड का राज्य

मिलगा। हिन्दूपति ने कहा कि 'चित्तौड़ तो मेरी रहा जो पृथ्वीराज एसी बात सुन लगा तो हम-तुम दोनों को जीवित नहीं छोड़ेगा।

करमचन्द ने सांत्वना देकर कहा कि आपका पृथ्वीराज क्या मारेगा? वह स्वयं पिता के जीवन काल में ही मर जावेगा। चित्तौड़ का सिंहासन तो आपको ही मिलेगा। सांगा को इस बात का विश्वास नहीं हुआ। फिर भी उसने पूछा कि तुम्हारा वतन कहाँ है? करमचंद ने कहा कि अजमेर है। सांगा ने कहा कि मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि मैं चित्तौड़ का शासक बन गया तो अजमेर तुमको दूँगा। यह सुनकर करमचंद ने सांगा के वाग में गोठ दी और १ घोड़ा २००) रु० का जो उसके घर पैदा हुआ था नजर किया। सांगा उसकी इस सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ। करमचंद ने अवसर देख कर निवेदन किया कि जिस दिन आप चित्तौड़ गद्दी पर सिंहासनारूढ़ हो जावेंगे तब मुझ गरीब को कौन याद रखेगा और कौन आपके पास पहुँचने देगा? इस लिए जो आपने फरमाया है उसे याद के वास्ते कागज पर लिख देवें तो मेरे लिए अच्छा रहेगा। सांगा ने फरमाया अच्छा कागज ले आओ। परन्तु वहाँ उस वक्त कागज तो नहीं मिला और बरगद के वृक्ष का एक पत्ता तोड़ कर करमचंद ने अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य से जो उचित समझा वह सांगा से लिखा लिया। इसके बाद चार दिन तक और सांगा को अपने यहाँ ठहराया और सांगा की सम्मान के साथ अच्छी सेवा की। रवाना होने के समय दो ऊँट और २०० रु० व्यय के लिये दिये और विदा किया।

इसके एक वर्ष बाद पृथ्वीराज मर गया। महाराणा रायमल ने उसकी जगह अपने दूसरे पुत्र जयमल को उत्तराधिकारी घोषित किया। उसको कुछ दिनों में बदनोर के जागीरदार सुरताण सोलंकी के एक राजपूत ने हत्या कर दी। तब राणा ने छोटे लड़के जैसा को राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया। वह अधिकतर शिकार में व्यस्त रहता था। महाराणा उस वक्त बीमार था। जैसा महाराणा का कोई ध्यान नहीं रखता था और न राज्य का काम सम्भालता था। उसका व्यवहार भी अच्छा नहीं था। इस कारण कोई भी आदमी उससे राजी न रह सका। राजपूत सरदार और कामदार सब यही चिंता किया करते थे कि मेवाड़ का इतना बड़ा राज्य इस अयोग्य से कैसे रखा जावेगा?

यह हाल देख कर सागा की मा झाली राणी ने कहा कि " अब आप लोग क्या मेरे बेटे से राज्य गवाते हो। पृथ्वीराज तो मर गया और सागा सपूत है। उन्होंने कहा नि सदेह उसको बुला कर कही आस-पास रख छोडिये क्योंकि यह वक्त नाजुक है राणाजी बीमार पडे हैं और जेमा कपूत है। राणी ने सागा को बुला लिया। जब राणा को जमीन पर उतारा तो बडे २ सरदार सागा को लेकर किले पर आये। इतने मे राणा की आख खुल गई तब तो उन्होंने सागा को पिता के चरण स्पर्श करवाये परन्तु पिता का दिल बेटे की तरफ से अब तक साफ न हुआ था। देखते ही क्रोध आ गया। मारने को पैर चलाया जिसमे चौका लगाते वक्त गोबर लग गया था। वह उस वक्त अगूठे से सागा के माथे पर लगा और वही उसका राजतिलक हो गया।

फिर राणा मर गया। कुछ सरदार तो उसको जलाने के वास्ते गये और शेष ने किले मे सागा के नाम की दुहाई फेरी। जेमा की मा, उसकी नामिया को किले से उतार दिया। दूसरे दिन सबने मिल कर सागा को गद्दी पर बठाया और आदमी भेज कर जेमा को कहलाया कि यहा से भाग जाओ, अन्यथा तुम्हारे मरने के दिन निकट आ गये हैं। उसको लाचार हो भागना पडा। पूरे राज्य पर सागा का अधिकार हो गया।

पवार करमचद यह सुन कर के बहुत खुश हुआ। उसने समझा कि अब उसकी आशा पूरी होगी और सागा उसकी सेवा को स्मरण करके उसे बुलाने लगा। परन्तु एक वर्ष इसी आशा मे बीत गया। सागा ने अनेक कठिनाइयो के बाद राज्य प्राप्त किया जिसकी उसे आशा ही नही थी। अत करमचद को भूल गया। अत मे करमचद अपनी सामर्थ्यानुसार तयारी करके चित्तौड गया। वहा महाराणा सागा से भेंट करने के लिये बहुत दिनो तक प्रयत्न किया परन्तु सफल नही हो पाया। अत मे वह एक ड्योढीदार से मिला और उसको रु० १०) देकर कहा कि मेरा एक छोटा सा काम है। वह तुमको करना होगा। उसने कहा बहुत अच्छा। काम फरमाइये।' करमचद ने वह वरने का पत्ता उसको देकर कहा कि दीवाणजी से मेरा मुजरा अर्ज करो और यह वरने का पत्ता दिखा कर कहा कि इसको राघव पवार का बेटा करमचद अवासर वाला लाया है और कहता है कि इसके ऊपर आपका कुछ लिखा हुआ है।'

ड्योढीदार करमचद को ड्योढी पर बठा कर वह पत्ता अन्दर ले गया। उसको देखत ही महाराणा को करमचद की याद आ गई। अपनी भूल के उपर बहुत पश्चाताप करके और शर्मिन्दा होकर प्रधान को हुक्म दिया कि "तुम बाहर जाकर करमचन्द को लाओ। वह गया और ले आया।

महाराणा सागा पवार को देखत ही खडा हो गया और बगलगीर होकर मिला। उसका बहुत सम्मान किया और कुशलता पूछी। फिर उसको बठा कर स्वय उसी वक्त अदर चले गये और अपने पहनने के कपडे और बाधन के हथियार उसके लिये भेजे और एक बडा इराका घोडा दिया। दीवान को आदेश दिया कि 'हम शाम को करमचन्द के डेरे पर जावेंगे। तुम अभी वहा जाकर सारी तयारी खान की करो। देखो! किसी बात की कमी नही रह और वहा बडे दर अपने दीवान खाने के शामियाने पाल पायगा जाजम दुलाचा चादर कनात सरायचा पाच हाथी २०० घाडे रथ सुखपाल वहल २०० राजपूत पौशाकें वगरह सामान चोपदार दरवान और १०००००) रुपये नकद भेज दो। दीवान ने तत्काल आदेश का पालन किया। जसे कि पिछले जमाने म श्री कृष्ण भगवान ने सुदामा ब्राह्मण के ऊपर कृपा करके उसकी गरीबी दूर की थी उसी तरह सागा ने गराब पवार करमचद को पल भर म निहाल कर दिया। जब प्रधान ने उपस्थित होकर निवदन किया कि रावत करमचद के डेरे पर सारी तयारी आदेशानुसार हो गई है। तब सागा ने पवार को विदाई दी और कहा कि 'शाम को हम तुम्हारे डेरे पर आते हैं। तब तक तुम कहीं न जाना। पवार मुजरा करके बाहर निकला तो देखा सुखपाल तैयार है और सभी सेवक उसकी सेवा के लिये तैयार खडे है। जब वह सुख पाल म बठ कर राजाओ की तरह धूमधाम से अपने डेरे पर पहुँचा और देखा कि वहा डेरे खडे हो गये हैं और सब थाता का आनन्द है।

सूर्यास्त के चार घडे पूव सब डेरे सजाये गये और दो घडे पूव सागा स्वय आया। लगभग एक घडे तक बठा और जाते वक्त करमचन्द को किले पर ले गया। और फिर अच्छा मुहूत देख कर उसको उसका वतन अजमेर और नीचे लिखे हुये परगने इनायत किये—

प्र अजमेर	प्र माडल
प्र बवाल	प्र बनेडा
प्र परबतसर	प्र फूलिया

इनके अतिरिक्त और बहुत सी इनायतें की। रावत का पद दिया जिससे वह करमचद जो एक छोटा सा आदमी था दस-पन्द्रह लाख रुपये के क्षेत्र का मालिक हो गया। उसन हमेशा के वास्त अपना नाम कायम रखने की इच्छा से इन परगनों म बहुत से गाव चारणो और ब्राह्मणो को मासण दिय। उसमे म चारणवास रोजाम वगरह जो-जो गाव वि प्र बवाल और पग्वतसर के साथ मारवाड म आ गये हैं वे अब तक उन लोगा क वशजा के अधिकार म है जिससे पवार करमचन्द का नाम बना हुआ है।

दूसरा उदाहरण सागा की सज्जनता और दान दाता का यह है कि जब माडू के शासक महमूद को बन्दी बना कर लाया गया तो उसके साथ एसा अच्छा व्यवहार किया कि जिसकी स्वप्न म भी उसको आशा नही थी। वह उससे प्राय बडे प्यार स मिला करता था और एक ही गद्दी क ऊपर बठ कर जलसा और दरबार किया करता था। एक दिन फूला की डाली आई तो महाराणा उसम से एक तुर्रा फूला का उठा कर बादशाह को देन लगा। बादशाह न कहा कि आपके मजहब म देने के दो तरीके लिखे है—एक तो यह कि ऊँचा हाथ करके दें और दूसरा यह कि नीचा हाथ करके। सा आप यह तुरा-किस तरीक स देते हैं। अगर हम को बादशाह समझ कर देत है ता नीचा हाथ करके दीजिये और इसके साथ कुछ नजर-भट भी होना चाहिय और जो स्वय को बादशाह और हमको लेने वाला समझते है तो अपना हाथ ऊचा रक्ख। मगर यह भी अपने दिल म इन्साफ करले कि लेने वाला सिफ इस एक फूल के वास्त ही अपना हाथ आपके हाथ के नीचे न करेगा।

महाराणा इस बात को सुन कर बहुत खुश हुआ और हसकर बोला कि खाली फूल हा नही है बल्कि इसके साथ आधा राज्य मालवा का भी है।' महमूद न जिसको अपने मुक्त होन का भी विश्वास नहीं था आधे राज्य का ही गनीमत समझ कर इस कहावत पर अमल किया कि जो धन जाता जानिये आधा लिज बाट ' हाथ बढा कर वह तुरा ल लिया। महाराणा न दूसर तीसर दिन ही बादशाह का बड मान-सम्मान क साथ विदा किया और अपने बड-बडे सरदारा का साथ भेजा जिन्होन मालवे म जाकर उसको गद्दी पर बठाया।

तीसरा उदाहरण महाराणा का जाति पर विशेष कृपा का यह है कि उसने अपने युग म राजपूतो की मन्द बडी तनदेही स की। उसके वास्त गुजरात और मालवा के सुलताना को लड कर पराजित किया। मन्नाराय चौहान और सलहदी तवर के पर मालवा मे उसकी मदद मे जम थ। ईडर म राठोड रायमल भी उसी के बल पर गुजरात के सुलतान मुजफ्फर के हिमायती भारमल का निकाल कर राव बना था। राजपूता को ही नही बल्कि उसने दिल्ली के लोदी शाहजादा मेवात के खानजादा और दूसर मुसलमान अमीरा को भी उसी तरह पनाह दी और उसकी सहायता स बाबर बान्शाह स युद्ध करने का निश्चय किया। उसम तकदीर की मन्द नहीं होने से फतह नही हुई तो भी उमस उनकी प्रसिद्धि सम्पूर्ण हिन्दुस्तान म फल गई।

इसी तरह इससे पहिले जब दिल्ली क शासक इब्राहीम लादी न चन्देरी के स्वामी अहमद शाह का जो माडू के सुलतान महमून खिलजी का भतीजा था उसे बालक देख कर चदेरी स निकाल दिया था तब महाराणा ने उसका बदला लने क लिय मालवा की तरफ स सुलतान इब्राहीम के ऊपर चढाई की। अहमद शाह के पिता मुहम्मद शाह न अपन भाई सुलतान महमून के विरुद्ध हो चन्देरी पर कब्जा करने के बाद न्लिा के बादशाह सिकन्दर लोदी की आधीनता स्वीकार करली थी। परतु देश काल देखते हुए वह महाराणा से भी मेल रखता था। यह चढाई करन म महाराणा का उद्देश्य था कि अतत वह पठाना को आगरा और न्लिी स निकाल देवें। परतु जब धोलपुर म पहुँचा ता उसक सरदारो ने जो पहिले कभी इतनी बडा और दूरी की मुहिम पर नही गये थे आग बढन स इनकार किया जिससे लाचार होकर महाराणा चदेरी गया और सुलतान इब्राहीम लोदी की सना को निकाल कर अपनी तरफ स देखभाल के लिये मेदनीराय चौहान को वहाँ अहमदशाह के पास छोड आया कि पठाना को उस क्षेत्र म दखल न करन देवें।

चौथा उदाहरण यह है कि स० १५७६ म सुलतान मुजफ्फर ईडर के राव रायमल को निकाल कर अपने एक अमीर निजाम खा को वहा छाड गया था। वह एक दिन दरबार मे बहुत सी बातें शखी की करन लगा तो एक भाट ने कहा कि तुम यह न समझो कि मैं हमशा इसी तरह ईडर का हाकिम

रहूगा। क्न राणा सागा जो जिनके बराबर आज कोइ हिंदुस्तान म शक्ति शाली नहीं है रायमल को लेकर आयेंगे और तुमको निकाल बाहर करेंगे।" निजाम खा जिसको एक शेखी या खिताब भी मिला हुआ था, यह सुनते ही क्रोधित हो गया और बोला "वह क्यो नही आता है ? मैं तो यहाँ ही बठा हू। यदि वह नही आता है तो मेरे नजदीक (१ कुत्ते की तरफ इशारा करके) इसके बराबर है।'

भाट ने महाराणा के पास जाकर यह हाल कहा। महाराणा ने उसी समय चढाई की तयारी की और सिरोही और बागड म होकर ईडर पर आक्रमण कर दिया। निजाम खा ने घबरा कर सुलतान मुजफ्फर से मदद मागी। गुजरात के अमीरो न कहा कि उसको क्या आवश्यकता थी जो ऐसा बडा बोल मुह स निकाल कर महाराणा का कोप भाजन बना।' यह सुन कर सुलतान भी चुप रहा। उसन कोई सहायता नही की। तब निजाम खा ईडर से भाग कर अहमद नगर म जा बठा। महाराणा ने वहाँ भी उसको जा घेरा और उस भाट ने अदर जाकर उसको बहुत सा उभारा तो वह बाहर निकल कर लडा और घायल होकर अहमदाबाद की तरफ भागा। महाराणा ने अहमद नगर को लूटा और अपने अमीरो को कहा कि अहमदाबाद यहा स २० कोस है चले-चलो तो मुजफ्फर स भी समझ लें। अमीरो न यह कह कर अपनी असहमति प्रकट कर दी कि इससे पूर्व भी इससे आगे कोई नही बढा था। तो भी महाराणा न कई मजिल आगे बढ कर बडनगर और वीसलनगर को फतह कर लिया। जब अहमदाबाद की तरफ स किसी को आते हुए नही देखा तो वापस ईडर होकर चित्तौड की तरफ कूच किया। उसकी इस चढाई मे कई सरदार गुजरात के मारे गये और उनका गर्व सब समाप्त हो गया।

पाववा उदाहरण उसके धर्मात्मा के रूप म यह है कि जब उसके अमीरो ने अहमदाबाद जाने म आनाकानी की तो गुजरात के गिरासिया न जो महाराणा के साथ थे निवेदन किया कि यदि आप अहमदाबाद नही चलते है तो बडनगर तो चलिये ताकि वहा की बहुत सी दौलत हाथ लगगी। क्योकि वहा के रहने वाले सब धन सम्पन्न हैं। इस पर महाराणा अहमदनगर स रवाना होकर बडनगर पहुँचा। उस शहर म अधिकतर ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने एकत्रित होकर महाराणा स निवेदन किया कि आप हिंदुओ के स्वामी हो। हमारे ऊपर जुल्म मत करो। हम बारह पीढी स यहाँ रहते है।

किसी ने हम पर आज तक जुल्म नहीं किया है।" महाराणा ने यह सुनकर लूट मार बंद करवा दी और उसी वक्त बीमलनगर की तरफ कूच कर दिया।

छठा उदाहरण उनके मुनसिफ मिजाजी का यह है कि सं० १५८२ (१५२६ ई०) में सुलतान मुजफ्फर का पुत्र बहादुर जो एक चालाक और बहादुर शाहजादा था पिता की अप्रसन्नता से चित्तौड में आया। महाराणा ने उसका बडा आदर सत्कार किया और बहुत हत और प्यार से अपने पास रक्खा। महाराणा की मां जो भालावाड क्षत्र-गुजरात के राजा राजधर की बेटी थी उसको बेटा कह कर पुकारती थी।

एक दिन महाराणा के एक भतीजे ने बहादुर की दावत दी। रात्रि की महफिल हुई। और नृत्य गान करने वाली एक से एक सुन्दरियां थीं जिनको देख कर बहादुर की आंख खुल गई। उनमें भी एक वेश्या बहुत सुन्दर और नाचने गाने बजाने और रिझाने में बडी चतुर और सुघड थी। बहादुर बार २ उसकी सराहना करता था। इस पर महाराणा के भतीजे ने जोश में आ कर कहा कि बहादुर खां तुम जानते हो। यह पातर कौन है? उसने कहा कि मैं तो नहीं जानता। मगर तुम बताओ। वह बोला कि यह महमदनगर के अमुक सरदार की बेटी है। इसको पहिले राणा जी पकड लाये थे और उसका नाम भी बता दिया। वह व्यक्ति शायद बादशाही खानदान से था। अतः उसका नाम सुनते ही बहादुर ने अपने को दावत देने वाले की कमर पर ऐसी तलवार मारी कि उसके दो टुकडे हो गये और फिर वह उसी तरह खून भरी हुई तलवार लेकर खडा हो गया। राजपूतों ने चारों तरफ से घेर कर चाहा कि उसको मार डालें। परंतु महाराणा की मां ने अविलम्ब वहां उपस्थित हो कर कहा कि जो कोई मेरे बेटे बहादुर को मारेगा तो मैं तलवार अपने पेट में मार कर मर जाऊंगी। महाराणा ने भी वास्तविकता का पता लगा करके कहा कि उस कमबख्त ने शाहजादा गुजरात के समक्ष ऐसी बात क्यों कही? जिसका नतीजा यह हुआ। अब कोई बहादुर खां से कुछ नहीं कहे। फिर किसकी हिम्मत थी कि उस आज्ञा का उलंघन करता। यों झगडा समाप्त हो गया और बहादुर[1] जब तक वहां रहा किसी ने उसके कुछ नहीं कहा।

---

१ विधि की विडम्बना है कि उस बहादुर को भी कुछ वर्ष बाद जबकि वह गुजरात का बदशाह हो गया था चित्तौड विजय करने में सफलता मिली। (देवी०)।

अब कुछ हकीकत महाराणा और उनके भाइयों के आपस में बिगाड़ और लडाई भगडा होने की भी लिखी जाती है जिसका जगह-जगह जिक्र आया है जो निहायत ही अनोखी बात इस खानदान की तवारीख में से है और उसका कारण भी बड़ा आश्चर्य जनक है। महाराणा सांगा पृथ्वीराज और जयमल तीनों सहोदर भाई थे और उनकी मां भाला राजधर बाघावत की बेटा थी। उस करामाती औरत चारणी देवी से जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है भेंट के पूर्व तक उन तीनों में किसी तरह का वैर भाव नहीं था। ज्यों ही औरत के मुंह से सांगा के भाग्योदय की बात निकली उनके भाइयों के दिल में एक दम ईर्ष्या की आग भडक उठी और पल भर में वे एक दूसरे के दुश्मन हो गये। पृथ्वीराज ने सांगा से पहिले पैदा होने में जल्दी पर निकाल थे बस ही भाई चारे की जड काटने में भी अब पहिल उसी ने हाथ उठाया और यह सब करने में उसने इतना भी ध्यान नहीं रखा कि उस चारणी देवी की तो बात जाने दें बल्कि उसके सामने उसकी बात को भूठी साबित करने के लिये सांगा को मारने के लिये तलवार चलाई। सूरजमल ने बीच में आकर उस तलवार का प्रहार अपने ऊपर लिया। यह मार कुटाई देख कर वह देवी तो जिसकी जबान में यह सोया हुआ भगडा जाग उठा था भाग गई। इधर वहां कुछ देर तक वे भाई और लडे। अन्त में पृथ्वीराज और सूरजमल तो जख्मों से चूर होकर गिरे। सांगा के शरीर पर तलवार से पांच जख्म और एक तीर आंख में लगा और वह भाग निकला। जयमल ने देखा कि पृथ्वीराज का तो काम तमाम हुआ और सांगा को अब मैं मार लूं तो राज्य के वास्ते फिर कोई दावेदार नहीं रहेगा। यह सोच कर सांगा को पकडने के लिये वह दौडा। सांगा बीदा नाम के एक सरदार के गांव में जाकर उसके घोडे पर आगे जाने को सवार होने वाला था कि जयमल जा पहुँचा। बीदा अपने महमान की जान बचाने के लिये लड़ा और मारा गया। इतने में सांगा बहुत दूर निकल गया और भेस बदल कर एक गंवार के घर में बकरियां चराने के लिये नौकर रहा। उसकी औरत प्रतिदिन लड लड कर उसको सताया करती थी और कहती थी कि तू खाना खाना जानता है। बकरियां चराना नहीं जानता। सांगा देश-काल देख कर उसके तानों को चुपचाप सुनता रहता था और कुछ नहीं बोलता था। एक दिन कई राजपूतों ने उसको उस स्थिति में पाकर एक घोडा और कुछ हथियार वहीं से ला दिये। तब सांगा वहां से रवाना होकर कुछ दिनों बाद पवार करमचन्द के पास

गया। फिर आगे जो कुछ हुआ वह ऊपर लिखा जा चुका है । परन्तु उसके उत्तराधिकारी होने का वर्णन पहिले किया गया वह उसके पिता की खुशी से नही था, बल्कि अन्तिम समय में सरदारों ने जबरदस्ती कराया था जैसा कि हम अभी लिख चुके है ।

इन तीनो भाइयो के अतिरिक्त महाराणा रायमल के कई बेटे और भी दूसरी रानियो से थे। परन्तु ज्यादा प्रसिद्ध वे ही हैं इसलिये उन तीनो को ही नाम लिखा गया।

महाराणा संग्रामसिह ने १९ वर्ष राज्य किया । इस अल्प काल में जितनी लडाइयां उसने लडी और विजय प्राप्त की उतनी उसके पूर्वजों में से किसी ने भी नही की होगी । सांगा का अधिकार गुजरात में अहमदनगर तक जो चित्तौड से १०० कोस है और मालवा में २०० कोस , चदेरी और भेलसा तक जो नर्वदा नदी के पास है और हिन्दुस्तान की तरफ आगरा तक यह भी २०० कोस की दूरी पर है आदि अन्य क्षेत्र में फैला हुआ था । राजपूताना तो सिंध तक उसके अधिकार में ही था। इन क्षेत्रों में अपना अधिकार बनाये रखने के लिये महाराणा ने जगह जगह किलो को मजबूत किया था और बडे-बडे योग्य और बहादुर अधिकारियो को उस क्षेत्र के प्रत्येक भाग में प्रशासक नियुक्त करके रखा था। मगर घर की फूट और खराबी जो हिन्दुस्तानी राज्यों में अधिकतर विवाह करने से पड जाया करती हैं और वह सांगा के समय में भी शुरू हो गई थी जिसकी नींव स्वयं सांगा ने हाडी राणी कमवती के प्यार से उसके बेटा विक्रमाजीत और उदयसिंह को रणथंभोर का किला और क्षेत्र अपने उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह की इच्छा के विरुद्ध देकर अपने हाथो से डाली थी। इस कारण उसके बेटो और सरदारो में फूट पड गई। प्रत्येक एक दूसरे का दुश्मन हो गया और सरदार लोग जिसका जिससे मन था उसी की मजबूती चाहने लगे। महाराणा सांगा के मरने के बाद कुछ सरदार इधर और कुछ उधर हो गये थे और जिस रानी ने अपने पति के ऊपर दबाव डाल कर अपने बेटो को रणथंभोर दिलाया था उसी ने अब उनको शासक बनाने के लिये बाबर हुमायूं और बहादुर के पास संदेश भेजे। फिर कई ऐसी घटनाएं घटी जिनके कारण उसकी इच्छा पूरी हो गयी । परन्तु चित्तौड के ऊपर बडी २ विपत्तियां आईं और दो तीन पीढी तक खून की नदियां बहती रही। इतना बडा राज्य फिर किसी से नही संभल सका और इतना जल्दी अधिकार हाथ से निकल गया कि जिन लोगों ने उसको बनते हुए देखा था उन्होंने बिगडते हुए भी देख लिया ।

(२) महाराणा रत्नसिंह[1]

महाराणा संग्रामसिंह के ५ पुत्र थे— १ भोजराज, २ करण, ३ रत्नसिंह। इन तीनों की मां जोधपुर के कुंवर बाघा की बेटी धनबाई थी। महाराणा रत्नसिंह का जन्म वैशाख बदि ८, १५५३ वि[2] को हुआ था। ४ विक्रमाजीत और ५ उदयसिंह इन दोनों की मां बूंदी के हाडा राव नरबद की बेटी करमवती बाई थी।

इन पांचों में से भोजराज और करण तो महाराणा के जीवन-काल में ही मर चुके थे। उसके बाद रत्नसिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया था। महाराणा का हाडा रानी से बहुत अधिक प्रेम था। इसलिये उसने एक दिन निवेदन किया कि रत्नसिंह तो आप के बाद राज्य का मालिक होगा, परन्तु

---

१ 'मेवाड़ देश के महाराणा श्री रत्नसिंह, विक्रमाजीत और बनवीर का जीवन चरित्र' सम्वत—१९५०।

२ बुधवार अप्रेल ६, १४९६ ई०, (म०)।

सलहदी तवर को रायसन से अपने पास बुलाया और उसकी जागीर बन्द की जिससे वह महाराणा के शामिल नही हो सके। इस अदूरदर्शिता पूर्ण काय से उसका और काम बिगड गया। क्योंकि सलहदी का सुलतान पर विश्वास नहा रहा और वह विद्रोही होकर महाराणा स जा मिला। उस वक्त महाराणा ने सलहदी और अपने सब सरदारो को एकत्रित करके सलाह की कि अब क्या करना चाहिये। गुजरात के सुलतान बहादुर शाह की तरफ स खतरा था। पहिले भी जब सुलतान महमूद मेदनीराय वगरह राजपूतो के दबाव स गद्दी छोडकर गुजरात चला गया तो उसके पिता मुज्जफर शाह ने उसकी मदद की थी। इसलिये इस सबध म सुलतान से राय लेना उचित समझा। महाराणा ने अपने वकील डूगरसी और जाजरमी को सलहदी के पुत्र भूपतराय के साथ सुलतान के पास भेजे। वह भी इस समय सुलतान महमूद से बिगडा हुआ बठा था। इनके आने को मालवा लेने की बधाई समझ कर या यह सोच कर कि यदि मेवाड के सूरमा राजपूत मालवा लेंगे तो व अधिक शक्ति शाली हो जावेंगे, मालवे की तरफ रवाना हुआ। जब खरजा की घाटी के पास पहुँचा तो महाराणा और सलहदी उससे मिलने गय। यह भेंट बड उत्साह से हुई। और दोनो तरफ स भेंट और सौगातें दी गइ। सुलतान ने ३० हाथी बहुत से घोडे और १५० जरी के सिरोपाव महाराणा को दिये। महाराणा सुलतान बहादुर को मालवा विजय करने का अधिकार देकर कुछ दिनो बाद अपने राज्य म लौट आया। सुलतान ने सलहदी दलीपराय ईडर और वागड के राजाओ और राणा के वकीलो डूगरसी वगरह के साथ माडू की तरफ जाकर सुलतान महमूद के ऊपर फतह पाई। मालवा को अपने राज्य म मिला कर सुलतान मजकूर को मार डाला। सलहदी की सेवा से खुश होकर उस वक्त तो रायसेन भेलसा उज्जन और सारगपुर वगरह उसको जागीर म दे दिये। परन्तु बाद म उसकी उद्दडता के कारण अप्रसन्न होकर उस पर चढाई की। सलहदी ने अपने बेटे भूपतराय को महाराणा के पास सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा। महाराणा ने अपने भाई विक्रमाजीत को ४० ००० सवार और पैदल सनिक देकर उसके साथ विदा किया। जब वह सेना रायसेन के पास पहुँची तो सलहदी का छोटा बेटा पूरणमल २००० सवारो से निकल कर बेरमय गया और वहा सुलतान के थानदार के साथ लडाई करके विक्रमाजीत से जा मिला।

सुलतान ने यह खबर सुन कर खानदेश के हाकिम मुहम्मद खा को

विक्रमाजीत से मुकाबला करने के लिए रवाना किया। विक्रमाजीत ने इसकी सूचना महाराणा के पास भेजी। तब तो महाराणा स्वयं विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा। खरसया पहुँचने पर मुहम्मद खां ने यह खबर सुना और अविलम्ब सुलतान बहादुर को तत्सबंधी सूचना दी। सुलतान रायसेन का घेरा वैसा ही छोड़ कर महाराणा का सामना करने आगे बढ़ा। सुलतान के आगे बढ़ने के समाचार अपने जासूसों से मिलने के पूर्व ही महाराणा ने एक मंजिल पीछे हट कर सुलतान बहादुर के पास वकील भेजे, जिन्होंने उसके पास जाकर कहा कि महाराणा ने मनहूरी की तकलीफ का हाल सुन कर विक्रमाजीत को इस उद्देश्य से भेजा है कि आपसे सिफारिश करें। अब जो आप यह तो आपके पास आवें। सुलतान ने कहा बहुत अच्छा। वकीलों ने वापस जाकर राणा से कहा कि हम बहादुर शाह की अपनी आंखों से देख आये हैं। उसके साथ एक और शक्ति शाली सेना है।'

इधर तो यह हो रहा था और उधर रणथंभोर से यह खबर पहुँची कि हाडा राणी[1] कर्मवती अपने बेटे विक्रमाजीत को मेवाड़ का महाराणा बनाने के वास्ते बाबर बादशाह और सुलतान बहादुर से अपने भाई राव सूरजमल हाडा के माध्यम से चुपके २ बात चीत कर रही है।

इन बातों से अनुभवहीन महाराणा एकदम घबरा उठा और सुलतान बहादुर के आने से और भी शंका में पड़ कर अविलम्ब चित्तौड़ को लौट गया। विक्रमाजीत को भी लौट आने का हुक्म लिख भेजा। सुलतान कुछ और दूर तक महाराणा का पीछा करके वापस रायसेन आ गया।

मनहूरी ने यह सब उतार चढ़ाव देखा तो सहायता की आशा नहीं रही। अतः अकेले अपनी जान पर खेल कर सुलतान से युद्ध किया और अंत

१ कहते हैं कि इस राणी ने राजस्थानी परम्परानुसार राखी भेज कर बाबर के बेटे हुमायूं को अपना राखी बंद भाई बनाया था और बाबर बादशाह से यह वादा किया था कि जो आप मेरे बेटे विक्रमाजीत को चित्तौड़ का शासक बना देंगे तो सुलतान होशंग मालवा वाले का ताज जड़ाऊ पेटी और रणथंभोर का किला आपको नजर किया जावेगा। मगर बादशाह बाबर ने इसका नाम अपनी पुस्तक बाबर नामा में पद्मावती लिखा है। (देवी०)।

के अत्यन्त विश्वासपात्र राजपूत अशोक की तरफ से कुछ आदमी आये थे और ७० लाख की जागीर लेने की शर्त पर विक्रमाजीत के अधीनता स्वीकार कर लेने का समाचार लाये। यह अशोक हिन्दू विक्रमाजीत की मा पद्मावती (पद्मवती) का रिश्तेदार होता है। उसने विक्रमाजीत का मेरा सेवा के लिये राजी कर लिया है। सुलतान महमूद से लिया हुआ रत्न जटित मुकुट और कमर पट्टा जो विक्रमाजीत के पास है उसने मुझे देना स्वीकार किया और रणथंभोर देकर मुझ से बयाना लेने की बात चीत की परन्तु मैंने बयाना की बात को टाल कर रणथंभोर के बदले में शम्साबाद देने को कहा। उसी दिन उसके इन आदमियों को खिलअत पहना कर ९ दिन के बाद बयाने में मिलने को कह कर विदा किये।

सोमवार के दिन पाँचवीं सफर (अक्तूबर १९ १५२८ ई०) आगरे में विक्रमाजीत के पहिले और पिछले वकील के साथ अपने कदीमी हिन्दुओं में से देवा के बेटे[1] (?) को भेजा गया कि रणथंभोर सौंपने और विक्रमाजीत की सेवा स्वीकार करने की शर्तें हिन्दुओं की रीति के अनुसार तय करें। मैंने भी यह कहा कि यदि विक्रमाजीत गुप्त अपनी शर्तों पर दृढ़ रहे तो उसके पिता की जगह उसको चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा दूंगा।'

---

१ नाम नहीं पढ़ा गया स्पष्टतया जगह खाली छोड़ दी है। (टी०)। बाबरनामा (बेवरीज कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग २ पृ० ६१६) में उसका नाम हामूसी दिया है। वह भाग का रहने वाला था। (गo)।

(३) महाराणा विक्रमाजीत[1]

महाराणा विक्रमाजीत सम्वत १५८८ (१५३१ ई०) में रणथंभोर से चित्तौड़ आकर राज सिंहासन पर बैठा। उस वक्त उसकी आयु १२-१३ वर्ष के करीब थी। उसके पिता महाराणा संग्रामसिंह चारों तरफ अपने राज्य की सीमा को बढ़ा कर ६ करोड़ की आय का विस्तृत राज्य अपने उत्तराधिकारियों के लिये छोड़ गया था। अब उसके बिगड़ने का वक्त आ गया था। क्योंकि प्रथम तो इधर महाराणा नाबालिग होने के कारण सिवाय खेल-कूद और पहलवानों की लड़ाई देखने के और कोई काम नहीं करता था, इस कारण राज्य में अव्यवस्था फैल रही थी और उधर गुजरात का सुलतान बहादुर शाह मालवे से मेवाड़ के थाने (सैनिक चौकियाँ) उठाता हुआ चला आ रहा था। महाराणा संग्रामसिंह ने मालवे के बड़े जिले और किले सुलतान महमूद से छीन लिये थे। उनमें से चंदेरी को संवत् १५८४

1 मेवाड़ देश के महाराणा श्री रत्नसिंह विक्रमाजीत और बनबीर का जीवन चरित्र सम्वत् १९५०।

(१५२८ ई०) में बाबर बादशाह ने मदनीराय से ले लिया था और रायसेन भेलसा मदसौर और गागरोन को सुलतान बहादुर गुजराती ने फतह कर लिये थे। महाराणा विक्रमाजीत उसका कोई प्रतिरोध नही कर सका। गागरोन के किलेदार ने तो गुजरात की फौज मार भगाई और जब स्वयं बहादुर शाह चढ़ कर गया तो उससे भी उसने युद्ध किया। परंतु समय पर सहायता नही पहुँचने से लाचार हो आत्म समर्पण करना पड़ा। गागरोन फतह करके बहादुर शाह मदसौर पहुँचा। वहा का किलेदार बिना लडे ही किला छोड कर भाग गया। सम्वत् १५८९ (१५३२ ई०) में मेवाड वालो के विरुद्ध मालवा क्षेत्र में यह सुलतान की अन्तिम विजय था। यो निरंतर प्राप्त सफलताओ से उसको मेवाड पर आक्रमण करने का साहस हुआ। उसने चित्तौड के किले पर अधिकार करने के वास्ते रूमी खाँ के नेतृत्व में एक बडा तोपखाना तयार करना शुरू किया। इस वर्ष की तयारी के बाद विशाल सेना के साथ चित्तौड पर चढाई की। दुर्ग को बचाने के वास्ते बूदी जोधपुर और मेडते से बहादुर हाडे-राठौड आकर सीसोदिया शूरमाओ के साथ शामिल हुए। और वे बहादुर राजपूत सरदार बडी बहादुरी से लडे कि सुलतान के तोपखाने की आग भी उनकी तलवार के पानी से बुझ गई। फिर भी राणा कमवती ने बहादुर शाह को जिद्दी शक्तिशाली और अपने बेटे को नादान और गाफिल देख कर बहादुर से सुलह कर लेनी उचित समझी। कमवती ने सुलतान होशग का जडाऊ ताज कमर पेटी और कई कीमती जवाहरात[1] जो महाराणा सग्रामसिंह को सुलतान महमूद खिलजी से हाथ लगे थे और मालवा का वह सब क्षेत्र जो चित्तौड के अधिकार में था बहादुर शाह को देकर उससे सुलह कर ली। यो बहादुर ने तीन महीने तक घेरा रखने के बाद चित्तौड से कूच करके अजमेर और रणथभोर को राणा के आदमियो से लेने के वास्ते फौज भेजी और स्वयं माडू लौट गया।

कहते है कि वह महाराणा के भाई उदयसिंह को भी तब अपने साथ ले गया था। सुलतान बहादुर शाह निःसतान था। अत उसकी इच्छा थी कि उदयसिंह को मुसलमान बना कर अपना उत्तराधिकारी बना दे। इस भेद का महाराणा के आदमियो को पता चल गया। वे उदयसिंह को लेकर भाग आये। इससे बहादुर शाह बहुत नाराज हुआ।

---

१ इसके अतिरिक्त १० हाथी और १०० घोडे भी दिये (म)।

बहादुर शाह के आक्रमण से भी महाराणा ने कोई सबक नहीं लिया और अपनी स्थिति को मजबूत करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। साथ ही अपने शत्रु से बेखबर रह कर वह ही सुस्ती और निकम्मी बातों में उसने अपना समय गवाया। और बदमिजाजी से अपने मुसाहबों और सरदारों को भी नाराज करता रहा।

बहादुर शाह ने दूसरे वर्ष फिर पहिले से ज्यादा तोपखाना लेकर और रूमी खां को चित्तौड़ का हाकिम बनाने का वचन देकर के चढ़ाई की। मेवाड़ के सूर-वीरों को फिर उससे लड़ना पड़ा। सिरोही, जालौर, बूंदी के चौहान फिर महाराणा की मदद को आये। राठौड़ भी मारवाड़ से वक्त पर पहुँचे। (देवलिया प्रतापगढ़ के महारावल) सूरजमल का बेटा बाघसिंह जो महाराणा की बदमिजाजी से अप्रसन्न होकर माण्डू के बादशाह के पास चला गया था यह खबर सुन कर अपने पूर्वजों की राजधानी को बचाने के वास्ते विशाल सेना लेकर आया। कमवती रानी ने उसकी बड़ी खातिर की और सरदारों ने उसको जगा लियाकता के लिहाज से उसको अपना सेनापति बनाया।

राणी ने हुमायूं बादशाह को भी लिखा और अपनी मदद के वास्ते बुलाया। बहादुर शाह ने उसका रास्ता रोकने के वास्ते अपनी फौज का एक हिस्सा नागौर और दूसरा आगरा की तरफ भेजा।

हुमायूं बादशाह उस वक्त बंगाल फतह करने जा रहा था। राणी का पत्र पढ़ कर कालिंजर से लौटा और बहादुर शाह के ऊपर रवाना हुआ। मगर मौलवियों ने कहा कि "जब एक मुसलमान बादशाह काफिरों से लड़ रहा है तो उसके ऊपर हमला करना इस्लाम धर्म के खिलाफ है। आपके दादा अमीर तमूर ने भी इसी सबब से रूम के सुलतान एलद्रुम बाइजीद के ऊपर चढ़ाई करना मुलतवी कर दिया था क्योंकि तब वह फिरंगियों से लड़ रहा था। जब वहां से निपट कर पीछा आया तो उन वक्त उन्होंने उसके ऊपर हमला किया।' बादशाह उक्त बात सुन कर मार्ग में सारंगपुर[1] ठहर गया।

१ मिरात सिकन्दरी के अनुसार ग्वालियर में ठहर गया था। साथ ही बहादुर शाह ने हुमायूं को इस आशय का पत्र लिखा था कि इस समय वह जिहाद (धर्म युद्ध) पर था, अतः हुमायूं का हिन्दुओं की मदद करना उचित नहीं होगा (स.)।

बहादुर शाह ने सुरग लगा कर किले का दावार बुरज सहित उडा दी। इसके साथ ही बूदी के राव के भाई अर्जुन और उसके ५०० हाडा राजपूत उड गय। चित्तौड के सूरमा सरदार बहुत दिना तक गुजरातिया क हमला के रोकते रहे परतु जत म जब किला बचने की आशा नही रही तब ता उन्होन राणी कमवती की सलाह स महाराणा और उसके छाटे भाई उदयसिंह का ता बूदा म राव सुरतान के पास भेज दिया और (रावत) बाघसिंह के सिर पर छत्र और झडा रख कर केसरिया बाना पहना और किले के दरवाजे खोल कर दुश्मनो मे खूब लडाई की यहा तक कि सब मार गये।

इस लडाई म ३० ००० हजार आदमी मार गय और १३ ००० हजार औरतें[1] राणी कमवती क साथ आग म जल मरी।

यह साका चत सुदी ४ सवत् १५९२[2] का हुआ। इस फतह म रूमी खा ने बहुत योग दिया था तो भी बहादुर शाह न अपना वचन नही निभाया। उसको किला नही दिया (हाकिम नही बनाया)। इस कारण वह नाराज होकर हुमायू बादशाह स मिल गया। हुमायू ने चित्तौड टूटन की खबर सुनते ही सारगपुर स आकर पहिल मदसौर म और फिर माडू म बहादुर को घेरा जहा वह रसद बद हा जान स लडाई हार कर द्वारका की तरफ भाग गया। बादशाह न माडू म महाराणा को बुलाया और अपन हाथ से तलवार उसके कमर म बाध कर पुन मेवाड का राज्य उसका दिया। महाराणा पुन चित्तौड पर पूरा अधिकार ही नही कर पाया था कि बहादुर के आने की खबर सुन कर हुमायू बादशाह खभात तक उसके मुकाबिले को गया। फिर पूव म शेरशाह पठान के जार पकडने की खबर सुन कर पीछे लौटा। अहमदाबाद म अपने भाई मिर्जा असकरी का छाड गया जिसको निकालने के वास्त इधर स मलिक अमीन हाकिम रणथभार बुरहानुल्मुल्क हाकिम चित्तौड और शमशरुल-मुल्क हाकिम अजमेर २० ००० सवारो के साथ पाटन तक पहुँचे। उधर से बहादुर शाह आया। मिर्जा असकरी उन सबस लडाई लड कर अहमदाबाद म ९ महीने रहन क

१ उक्त वणन ख्याता क आधार पर दिया है जा अतिशयोक्ति पूण है। (स)।

२ सोमवार माच ८ १५३५ ई०। (स०)।

बाद हिंदुस्तान की तरफ चल दिया। और बहादुर शाह चापानेर से फिर द्वारिका गया। वहा २ वष बाद उसको ठीक उसी दिन, जिस दिन कि उसने चित्तौड पर अधिकार किया था फिरंगिया पुर्तगालियों ने मार डाला। उसके कोई बेटा नही था। अत उसके विस्तृत राज्य म शाघ्र ही अव्यवस्था फैल गयी। यदि उस वक्त चित्तौड म काई योग्य, कुशल, शक्ति शाली शासक होता तो गुजरातिया की इस अव्यवस्था स बहुत लाभ उठा सकता था। मगर वहा तो महाराणा विक्रमाजीत था, जो अपने नाम के अनुसार एक भी गुण नही रखता था। उससे तो सिवाय बैठे रहने के और कुछ नही हो सका। चित्तौड अवश्य ही किसी तरह उसके हाथ आ गया था। मारवाड के राव मालदेव ने जो बडा साहसी था अजमेर वगरह कई मेवाड के परगने, जो गुजरातियो ने ले लिये थे फौजबन्दी करके अपने अधिकार म कर लिये।

इन बाता म मेवाड के सरदारो को बडा आघात पहुँचा। इधर वे महाराणा की बदमिजाजी स पहिले ही तग हो रहे थे। उसने अब तक जरा भी अपने चाल चलन को नही बदला था बल्कि उसकी बदमिजाजी प्रतिदिन बढती ही चली जा रही थी। यहा तक कि एक दिन भरी कचहरी म उसने पवार करमचन्द के, जिसको महाराणा सागा ने अजमेर का राजा बनाया था, घूसा मारा। उसकी आयु और इज्जत का भी कोई ध्यान नही रखा। यह हाल देख कर सब सरदार उठ खडे हो गये और चूडावतो के सरदार कानजी ने जो उच्च श्रेणी का सरदार था कहा कि सरदारो! अभी तो यह कली ही खिला है। फल लगना बाकी है।' यह सुनकर करमचद ने कहा कि कल ही उसको भी मजा चख लेगे।"

सरदार यो वह सुन कर पृथ्वीराज के खवास के बेटे बनवीर के पास गये और कहा कि चलो हम तुमको गद्दी पर बठा देवें। उसने कहा कि 'मै इस योग्य नही मुझ को क्षमा कीजिये। सरदारो ने कहा कि राज्य की दशा बहुत खराब हो रही है। यदि तुम नही स्वीकार करोगे तो दूसरा उठ जावेगा फिर उसकी सेवा किया करना।' यह सुन कर वह तयार हो गया और रात के वक्त महल म महाराणा को मार कर अपने पिता के बदले अपने दादा महाराणा रायमल की जगह बैठ गया।

मीरा बाई की कथा और उसके भजनो म वर्णन आता है कि राणा ने मीरा बाई के वास्ते जहर का प्याला भेजा और वह उसे चरणामृत करके

महाराणा विक्रमाजीत को बड़ा विश्वास था और जब बनवीर ने महाराणा को मारा तो पहिले उसको घर जाने की सीख दिला दी थी।

रावत ने यह दाना लेकर उसमें से कुछ नहीं खाया और वैसा का वैसा अपने सेवक को दे दिया। बनवीर ने कारण पूछा तो कहा कि मैं चौके में खाता हूँ। इस पर बनवीर ने नाराज हो कर निकल जाने का हुक्म दिया।

खान अपने और महाराणा विक्रमाजीत के १०००० आदमी एकत्रित करके कुंभलमेर उदयसिंह के पास पहुँचा और कहा कि मैं आपके लिये प्राण देने को तयार हूँ।

उदयसिंह ने १०८ नदियों का पानी और १०८ वृक्षों के पत्ते मंगवा कर अपना राज्याभिषेक करवाया। और सब सरदारों को बुलाने के वास्ते खास रुक्के भेजे। जालोर में सोनगरा चौहानों से सहायता मांगी। उस वक्त सोनगरों का सरदार अखेराज रणधीरोत मारवाड़ के राव मालदेव के राज्य का सेवक था। मालदेव ने मेवाड़ में दो राजा देख कर कई सीमांत परगनों पर अधिकार कर लिया था और राठोड़ कूंपा महराजोत को मदारिये में थाणेदार रखा था। अखेराज राव मालदेव की स्वीकृति से कूंपा मेहराजोत, राणा अखराजोत और जैसा भाटी भैरूदासोत वगैरह राठोड़ सरदारों को लेकर उदयसिंह की सहायतार्थ आया। इसी तरह और सरदार भी उपस्थित हुए जिनके नजराने में बहुत से हाथी घोड़े और नकद रुपये एकत्रित हो गये।

उसी समय तक में बनवीर के पुत्र की शादी होने वाली थी जिसके वास्ते उसने अपने एक पदाधिकारी रामनाथ को काठियावाड़ में घोड़े और कपड़े लाने के लिये भेजा था। वहां से ९०० घोड़े और अन्य सामान खरीद कर जब वह चित्तौड़ लौट रहा था तब सोनगरों ने जालोर के आस पास उसको मार कर वह सब सामान अखेराज को सौंपा। अखेराज ने अपनी पुत्री का विवाह उदयसिंह से कर वह सब सामान उसको दहेज में दे दिया और उसके अतिरिक्त उदयसिंह के आग्रह पर १०००० सिर सोनगरों के भी लेने स्वीकार किये।

फिर दूसरा विवाह उदयसिंह ने राठाड कूपा की बेटी से किया, जिससे १५,००० राठाड उसी वक्त उसके वास्त जान दने को तयार हो गय। इस तरह वह इन सबधियो की २५,००० फौज और उसस चौगुना अपने भाइयो और राजपूता की सना इकट्ठी करके १ लाख २० हजार सवार और पदल स चित्तौड के उपर सवत् १५९७ (१५४० ई०) म चढाई की। बनवीर न रास्त म आठ जगह अपनी फाज के थाने बठा रखे थ। पहिली लडाई मावली थान पर हुइ। उसम उदयसिंह की जात हुई। इसी तरह वह सब थाना को मार कर चित्तौडगढ की तलहटी म पहुँचा। वहा भी दो लडाइया हुइ जिनम उदयसिंह की जीत हुई। अब उसने उन सरदारो को जो कि बनवीर क पास थ लिखा कि जो जिस गाव म आकर हमारे कदमा से लगगा उसको वही गाव द दिया जावगा। इस लालच स व सब सरदार बनवीर का छाड छोड कर उसस आ मिल। तब उदयसिंह न आक्रमण करके किल क किवाड ताड डाले। बनवीर यह देखकर गुजरात की तरफ भाग गया और चित्तौड क किले पर उदयसिंह का अधिकार हा गया।



(५) महाराणा उदयसिह[1]

महाराणा उदयसिह का जन्म भाद्रपद सुदि ११ सवत् १५७८[2] को हुआ था। उसने चित्तौड म गद्दी पर बठ कर जब राठौड सरदारो को विदा दी तो राव मालदेव के वास्ते उस मदद के बदले म ४०,००० फीरोजी और बमतराय हाथी भेजा। दोनो तरफ पहिले २ खूब सच्चा और निष्कपट प्रेम रहा। लेकिन कुछ समय बाद ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि आपस म बडी दुश्मनी हो गई। मारवाड क्षेत्र के सरवा के जागीरदार भाला जेता की एक बेटी का तो राव मालदेव के साथ विवाह हुआ था जिसका नाम भाली सरूपदे था। उसके दूसरी बेटी और थी। राव उससे भी विवाह करना चाहता था। जेता की इच्छा एक बहिन को दूसरी बहिन की सौत बना देने की नही थी। इसी कारण उसने यह दूसरा विवाह करना स्वीकार नही किया। परतु जब राव ने बहुत अधिक दबाव डाला तो उसने नेक महीने

---

१ मेवाड देश के मशहूर महाराणा श्री उदयसिह जी का जीवन-चरित्र सम्वत् १९५०।

२ बुधवार अगस्त १४ १५२१ ई०।

या समरा राव से प्राप्त कर लिया और उधर राणा को खबर दी। राणा स्वय आया और उस लडकी से विवाह कर लिया। वह विवाह एक बड के नीचे हुआ था जो उसी दिन से झाली राणी का बड कहलाने लगा। यह हाल सुन कर राव बहुत क्रोधित हुआ और नाडोल जोजावर और बीसलपुर वगैरह गोडवाड के बडे-बडे गावो म थाने बैठा कर १५९७ वि [1] म उसने कुभलमेर फतह करने को फौज भेजी जिसके अधिकारियो म से राठोड पचायण करमसियोत और खीदा भारमलोत सीढी लगा कर किले के ऊपर चढ गये। परन्तु किलेदार के सावधान और सतर्क हो जाने के कारण वे दुर्ग म नही घुस पाये।

महाराणा ने यह समाचार प्राप्त कर अविलम्ब उधर चढ़ाई कर दी। मारवाड क थाना को उठा लिया। कासीयल म राठोड जेतसी ने बडी बहादुरी स उनका सामना किया, जिसस राणा को पीछे हटना पडा। उस वक्त राव मालदेव का तेज-प्रताप बहुत बढ़ा हुआ था। इसके बाद सवत् १६०० (१५४३ ई०) म जब वह शेरशाह बादशाह स पराजित हो गया और दो वर्ष तक जोधपुर पर पठानो का आधिपत्य रहा, तब महाराणा को अपना यह क्षेत्र वापस लेने का अवसर मिला। उस समय स महाराणा ज्यादा प्रसिद्ध हुआ।

सवत् १६०२ (१५४५ ई०) में शेरशाह के मरन पर राव मालदेव ने पठानो को भगा कर जोधपुर और अजमेर पर पुन अधिकार कर लिया। महाराणा को उसका अजमेर लेना बहुत बुरा लगा क्योकि उसको वह अपना समझता था, वह सेना लेकर उस ओर रवाना हुआ। राव के सेनापति राठोड पृथ्वीराज जतावत ने गाव धागले म मुकाबला करके उसको आगे नहीं बढने दिया। अत राणा वापस कुभलमेर लौट गया। अजमेर के ऊपर अधिकार करने के लिये पुन सैनिक तैयारी करने लगा। इतने म शेरशाह के बेटे सलीम शाह की फौज न राठोडो स अजमेर लेकर इन दोनों रजवाडो की तलवार म्यान म करा दी।

---

१ १५४० ई। उक्त सम्वत् सही नही है क्योकि उस समय तो उदयसिंह चित्तौड पर अधिकार करने के प्रयत्न म लगा हुआ था। (स०)।

महाराणा न इस समय को चित्तौडगढ की मरम्मत म लगाया जो बहादुरशाह की चढाइयो से टूट-फूट कर खराब हो गया था ।

सवत् १६१० (१५५३ ई०) म सलीमशाह के मरने पर राठौड पृथ्वीराज ने जोधपुर स आकर फिर अजमेर के किले को घेरा । किलेदार ने महाराणा को किला देना करके चित्तौड से बुलाया । महाराणा बहुत सी फौज लेकर गये और पृथ्वीराज को पराजित कर अजमेर पर अधिकार कर लिया । पठानो को वहाँ से सुरक्षित निकलने देकर उसने नागौर भी जा दबाया । इस बात से पृथ्वीराज बहुत लज्जित हुआ । उसने राव मालदेव के पास जो मेडता फतह करने को आ रहा था पहुँच कर उसको अजमेर के ऊपर लाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया । राव मेडता की विजय करना अजमेर से ज्यादा आवश्यक समझ कर पृथ्वीराज को भी अपने साथ ले गया । वहाँ उसकी हार हुई और पृथ्वीराज काम आया ।

महाराणा ने अजमेर और नागौर विजय करने के बाद रणथभोर के ऊपर फौज भेजी । वहा जो किलेदार था उसने भी अजमेर और नागौर के किलदारो की तरह वह किला महाराणा के सेनानायको को सौप दिया जो महाराणा विक्रमाजीत के राज्य म सुलतान बहादुर गुजराती न ले लिया था और फिर शेरशाह न उस पर अपना अधिकार जमा लिया था ।

सवत् १६११ (१५५४ ई०) म महाराणा ने सुरताण हाडा को जिसे महाराणा विक्रमाजीत ने बूदी का राज्य दिया था बुरे आचरण और हाडा सरदारो पर अत्याचार करने और उनके शिकायत करने पर अलग कर दिया । तब अर्जुन हाडा के बेटे सुरजन हाडा को बूदी का राज्य दिया और किले रणथभोर की चाबियां भी उसको अपना विश्वास पात्र समझ कर सौंप दी ।

कुछ दिनो बाद महाराणा विवाह करने बीकानेर गया । मार्ग म मालूम हुआ कि राव मालदेव की फौज ने राव जयमल मेडतिया को मेडते म घेर कर परेशान कर रक्खा है । महाराणा वहा जाकर जयमल को समझा कर अपने साथ ले गया । बीकानेर म राव कल्याणमल ने महाराणा का बहुत सम्मान किया । महाराणा विवाह के बाद पुन चित्तौड आ गया ।

सवत् १६१२ (१५५६ ई) मे अकबर बादशाह गद्दी पर बठा। सवत् १६१३ (१५५७ इ) म उसके दबाव से हाजी खा पठान जो सलीम-शाह का नौकर था अलवर से आमेर की तरफ आया और महाराणा के अधिकार-क्षेत्र म लूटमार करने लगा। इस पर महाराणा के अधिकारियो ने उससे लडाई की किन्तु वह उनको हरा कर अजमेर और नागौर का स्वामी बन बठा।

उक्त समाचार सुन कर महाराणा ने हाजी खा पर आक्रमण की तयारी प्रारम्भ कर दी। इसी समय राव मालदेव ने अपनी फौज अजमर फतह करने को भेजी। हाजी खा ने चालाकी से महाराणा के पास अपने भले आदमी भेज कर कहलाया कि राव मुझको मारना चाहते हैं। मैं तो यहा केवल आपके ही विश्वास पर बठा हू। तब तो महाराणा शीघ्र ही ५००० सेना लेकर अजमेर पहुँचा। इस पर राव की फौज मारवाड चली गई। महाराणा ने राठाड तेजसी डूगरसियोत और सूजा बालीसा को कहा कि 'तुम अजमेर जाकर हाजी खा से कहो कि हमने तुम्हारी सहायता की है। इसलिये तुम हमको कुछ हाथी कुछ सोना और रगराय पातर (वेश्या) हमको दो।' उन्होने अर्ज की कि 'हाजी खा बडा आदमी है और आज विपत्ति म है। आपने उसके ऊपर बडा अहसान किया है। इसलिये यह बात उसको कह-लाना उचित नहीं हैं। महाराणा ने स्वीकार नहीं किया और उनको बलात् भेजा। उन्होने हाजी खा के पास जाकर वह बात कही तो उसने उत्तर दिया कि मेरे पास कुछ भी देने को नही है और पातर तो मेरी पत्नी है। उसे कैसे दे सकता हू ?'

गुजरात की तवारीख 'मीरात-इ-सिकन्दरी' मे लिखा है कि हाजी खा ४० मन सोना और हाथी देने के लिये तो तयार हो गया था लेकिन रगराय पातर को देना उसने स्वीकार नहीं किया।

महाराणा यह सुनकर बहुत क्रोधित हुआ और तलवार के बल पर उसको अपने क्षेत्र से निकाल देने की तयारी करने लगा। हाजी खा ने देश काल देख कर राव मालदेव के पास अपने आदमी भेजे और कहलाया कि आप मेरी मदद करो। राव ने १५०० सवार राठोड देवीदास जतावत के नेतृत्व म अजमेर को रवाना किये।

की कीर्ति फली और सम्मान बढा । तब बादशाह ने अप्रसन्न होकर उसको कई बार अपने पास बुलाया । वह चाहता था कि आम्बेर वगैरह राजाओं की भांति महाराणा भी उसकी सेवा स्वीकार कर ले । महाराणा ने अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा को ध्यान में रख कर अकबर के आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया । परन्तु ज्यादा दबाव डालने पर और अन्य राजाओं के लिखने पर अपने छोटे कुंवर शक्तिसिंह को कुछ आदमियों के साथ अकबर की सेवा में भेज दिया ।

उस कुंवर की उम्र उस वक्त बहुत कम थी तो भी वह अपने पूर्वजों की तरह बड़ा घमंडी और हिन्दू धर्म का पूरा पालन करने वाला था । अकबर बादशाह उसको अपने बेटे के बराबर प्यार करता था । प्रायः शिकार के समय अपने साथ रखता था । एक बार वह यमुना के घाट पर बादशाह से कुछ आगे आगे जा रहा था कि प्यास लगी और किनारे पर बैठ कर पानी पीने को झुका । इतने में पीछे से बादशाह ने चुपचाप जल्दी से आकर उसके जामे को पांव से दबा लिया ताकि वह नदी में गिरने नहीं पावे । शक्तिसिंह को अपने जामे की पीछे की तरफ खिंचावट का आभास हुआ तो उसने पीछे घूम कर देखा और बादशाह को जामा दबाये हुए पाया । तब तो जो पानी पीने के वास्ते हाथ में ले रखा था अविलम्ब नीचे डाल दिया और उठने लगा । बादशाह ने कहा कि डर मत पानी पी ले । उसने चट जवाब दिया कि मैं पानी कैसे पीऊं ? मेरा कपड़ा तो आपने पकड़ रखा है । और पानी नहीं पिया । बादशाह को उस आयु में उसका यह छूआछूत का विचार देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और फिर उससे कुछ नहीं कहा[1] ।

महाराणा उदयसिंह ने बाज बहादुर आदि को आश्रय दिया था । यह बात बादशाह के दिल में हमेशा खटकती थी । इसके अतिरिक्त महाराणा का उपस्थित नहीं होना भी एक जख्म था और फिर चित्तौड़ के किले की मरम्मत करवा कर मजबूत करना मानो उस घाव के ऊपर नमक छिड़कना था । अतः अकबर को चित्तौड़ ध्वंस करने और महाराणा को अपने आधीन

---

१ यह घटना ऐतिहासिकता से परे है । शक्तिसिंह को महाराणा ने अकबर के पास नहीं भेजा था बल्कि कुछ कारणवश महाराणा से नाराज होकर वह स्वयं ही अकबर के पास चला गया था । (स०) ।

करने की चिंता हर समय रहती थी। मगर कुंवर शक्तिसिंह के हाजिर हो जाने से कोई बहाना नहीं मिल रहा था।

संवत् १६२४ (१५६७ ई०) में मालवा में उपद्रव होने की खबर आई। बादशाह भादवा बदि १२[1] को उस तरफ रवाना हुआ। धोलपुर में पहुँच कर मालवा के विद्रोहियों का दमन करने के उद्देश्य से उसने कहा कि हिन्दुस्तान के सब राजा और रईस हमारी दरगाह में हाजिर हो गये, मगर राणा अभी तक गफलत की नींद में ही सो रहा है, सो थोड़े ही दिनों में उसकी यह नींद घोड़ों की टापों से उड़ाई जावेगी।" और शक्तिसिंह की तरफ देख कर कहा कि 'तू इस चढ़ाई में अच्छी सेवा करना।" शक्तिसिंह यह बात सच समझ कर उस रात को ही डर के मारे अपने राज्य की तरफ चल दिया, जिससे बादशाह को एक बहाना मिल गया और चित्तौड़ फतह करने का दृढ़ निश्चय करके उसने उसी तरफ कूच कर दिया।

महाराणा ने बादशाह की चित्तौड़ पर चढ़ाई के समाचार सुन कर उसके चित्तौड़ पर आने के पूर्व दुर्ग में रसद और सेना का सारा सामान एकत्रित कर लिया और शत्रुओं के लिये कठिनाइयां उत्पन्न करने के लिये अपना सारा राज्य क्षेत्र उजाड़ दिया, यहां तक कि जंगल में घास का तिनका भी बाकी नहीं छोड़ा। और जब अपनी सीमा में बादशाह के पहुँचने की खबर सुनी तो मेड़ते के राव जयमल राठौड़ को ५००० मरने-मारने वाले राजपूतों के साथ किले में छोड़ कर स्वयं उदयपुर की तरफ चला गया। यह काम उसने इस उद्देश्य से किया था कि बाहर रहने से वह भीतर वालों को हर तरह की मदद[1] पहुँचा सकेगा। परन्तु आम लोगों में उसकी बड़ी बदनामी हुई, क्योंकि अब तक जिस तरह साके चित्तौड़ के ऊपर हुए उन सब में उसके पूर्वज बराबर उपस्थित रहे थे और मर कर ही उन्होंने उस किले को छोड़ा था। अतः हरेक व्यक्ति इस महाराणा से भी यही अपेक्षा रखते थे। महाराणा ने किले में एक ही जगह घिर कर मरना उचित नहीं समझा। बल्कि जहां जो व्यवस्था करनी चाहिये थी वहां पहुँच कर वह की। माडलगढ़ कुंभलमेर और गागुंदे के किलों को भी चित्तौड़ की तरह शस्त्रों से सजाया और उनमें अपने विश्वास के अच्छे-अच्छे

---

१ शनिवार अगस्त २ १५६७ ई०।

सैनिकों और राजपूतों को रक्खा। किन्तु रणथंभोर की तरफ से उसको पहिले ही संताप था जो राव सुर्जन हाडा को सौंपा हुआ था।

अकबर बादशाह धौलपुर से आगे बढ़ कर रास्ते में शिवपुर और कोटा को फतह करते हुए चित्तौड़ पहुँचा और किले को एक महीने में घेरा। इसकी ऊंचाई नापी गई तो दो कोस की निकली।

फिर बादशाह ने महाराणा के मुकाबले और दूसरे किलों को फतह करने के वास्ते आसफ खां के साथ सेना रवाना की। आसफ खा ने सब प्रथम मांडलगढ़ को घेरा। किलेदार रावत बल्लू सोलंकी ने बहुत बहादुरी के साथ उसका सामना किया। तब वह रामपुरा के ऊपर गया। वह शहर जल्दी ही फतह हो गया। वहां का स्वामी राव दुर्गा उदयपुर में महाराणा के पास चला गया।

हुसन अली खां ने बहुत सी सेना के साथ उदयपुर पर चढ़ाई की। महाराणा उससे लड कर कुंभलमेर की तरफ चला गया। फिर उसने और दूसरे बादशाही अमीरों ने महाराणा को बहुत ढूंढा परन्तु कोई पता नहीं लगा क्योंकि वह इस समय मेवाड़ छोड कर गुजरात की तरफ चला गया था। चित्तौड दुर्ग के चारों तरफ बहुत से मोरचे थे परन्तु उनमें से तीन बहुत बडे थे—

१ लाखोटा दरवाजे के सामने खास बादशाह का मोरचा था और उसके अधिकारी हसन खाँ राय पीताम्बर दास और काजी अली बगदादी वगरह थे।

२ दूसरा मोरचा सुजाअत खा, राजा टोडरमल और कासिम खा का था और

३ तीसरा मोरचा आसफ खा और वजीर खा का था।

एक दिन दुर्ग के सब सरदारों ने मिल कर साडा डोडिया को और दूसरी बार साहिब खा चौहान को भेज कर समझौते के लिये बातचीत करनी चाही। बादशाह ने यही कहा कि यदि राणा उदयसिंह उपस्थित हो जावे तो समझौता हो सकता है अन्यथा नहीं।' यह बात किले वालों

के अधिकार के बाहर थी। इसलिये उन्होंने समझौते की आशा छोड कर लडन मरन पर कमर बाध ली। वे हर राज् किले की दीवारो पर जम कर कगूरो के ऊपर स तीर और बन्दूकें मारा करत थ, जिससे बादशाही सना के आदमी और घाडे बहुत अधिक मात्रा म मारे जाते थ। जो तीर गालिया और गोले शाही सैनिक किले पर मारत थ वे आधे तो रास्त म ही रह जाते थ। बादशाही अमीर अपन मोरचा स निकल निकल कर किले पर हमले भी करत थ। परन्तु जब जमीन पर रहने वाला का हाथ आसमान वाला पर नही पहुच सकता है वस ही ये भी हमेशा थक कर पीछे चले आत थ। बादशाह न अपनी सेना के बचाव के वास्त मोरचा स किले की तरफ साबात बनाने शुरू किय थ। यह एक पटा हुआ पेचदार रास्ता होता था जिसम होकर सिपाही अपने को बचात हुए किले की दीवार तक पहुँच जाव परन्तु किले के गोलन्दाज अपने निशान म बडे चतुर थे। व साबात बनाने वाले मजदूरो और कारीगरो पर निशाना लगा कर एसे गोल मारते थे कि वे बिचारे जहा क तहा भुन कर रह जाते थ। जहा गोला लगाने की जगह नही होती थी वहाँ तीरन्दाज और बन्दूकची अपना कौशल दिखात थ। बादशाह न सब कारीगरो क वास्त चमडे की ढालें बनवा दी थी ताकि काम के वक्त व सिर के ऊपर रख लेवें। इस पर भी २०० आदमी प्रति दिन मारे जात थ। मजदूरी प्रति दिन महगी होती जाती थी। काम करने के लिय आने वाले मजदूरो को मजदूरी के अतिरिक्त इनाम भी मिलता था। खर्च का कोई हिसाब नही था। इस काय के लिय भारी मात्रा मे धन व्यय हो रहा था। कहावत प्रसिद्ध है कि अत म बादशाह ने दमदमा के ऊपर मिट्टी डालने वाला क वास्त एक टोकरी की एक अशरफी कर दी थी। यह मानो मजदूरो की जान की कीमत थी, जिसकी लाश भी टोकरी क साथ हो किले वालो के अचूक तीरो और गोलियो म गिर कर दमदमे की ऊचाई को बढ़ाती थी। चित्तौडी के नाम मे वह अब तक मौजूद है।

अबुल फजल 'अकबर-नामा' म लिखता है कि मिट्टी का मोल चादी और सोन क बराबर हो गया था।

जब एक तरफ म साबात और दूसरी तरफ स सुरगें किले की दीवार तक पहुँचा, तब वहा प्रथम म १२० मन और दूसरी म ८० मन बारूद भरा गई। बादशाह ने आदेश दिया कि सुरगो के पीछे सेना कमर बाध कर खडा रह। ज्यो ही किले की दीवार उडे, तुरत अन्दर पहुँच जावे।

बुधवार पौस सुदी ७[1] को सुरगा म कुछ दूरी स श्राग पहिले एक सुरग उडी, जिसस किले का एक बुज लडने को त श्रादमिया सहित उड गई। श्रभी दूसरी सुरग म वत्ता नहीं पडी फौज किले की दीवार का गिरी हुई देख कर दौड पडी। इतने म न भी श्राग ली और व लोग जो श्राग बढ़े थे जल कर मर गये म अव्यवस्था फल गया। इस सुरग की श्रावाज ५०-५० और दीवारा के पत्थर उड कर दूर २ तक गिरे। इसके श्रादमी किले के अदर के और २०० बादशाह के मार गये बडे २ श्रधिकारी थ, जिनको बादशाह भी पहिचानता था। कर दूसरे मारचा की सेना लडने के लिय आग बढी। राजपू जनक कुशलता दिखाई। व दुश्मना स लडत थ और गिरी हु भी मरम्मत करत जाते थ। यहा तक कि बहुत जल्दी उन्होन लम्बी चाडी दीवार बना ली।

उसी दिन श्रासफ खा के मोरचे पर म भी सुरग लगा सिफ ३० श्रादमी किले वालो के मरे। इसके अतिरिक्त को नहीं हुआ।

श्रब बादशाह ने सुरगा की कायवाही छाड कर एक बनाने और मारचा बढाने का श्रादश दिया। किले के निशानेब की गोली बहुत कम चूकती था और उनका सनापति इस निशानाबाज था कि जिस पर भी निशाना लगाता उसको मार श्रपन सामने के मोरचे पर गालिया की वर्षा कर वहा किसी का प भी बठने नही दता था। यहा तक कि कारीगरा न प्राण के भ काम बद कर दिया। बादशाह प्रतिदिन सवार होकर मारचा करता था। साथ ही जहा श्रवसर देखता वहा वृक्षा और पत्थ खडा होकर किले वालो पर गोली मारता था। उसकी गोला प्रा

---

१ सोमवार दिसम्बर ८ १५६७ ई०। उपयु क्त तिथि मु श ने भ्रान्तिवश ही लिखा है। वस्तुत माघ बदी १ १६२४ दिसम्बर १७ १५६७ ई० होना चाहिय। श्रकबर नामा ज० भा० ४६८। (क०)।

जाती थी। एक दिन वह उस मोरचे म भी जा निकला और उसके अपूर्ण रहन की जानकारी प्राप्त कर वृक्ष की ओट म खडा हो गया। इसी समय इस्माइल ने पाँच अधिकारियो को गोली मारी। बादशाह ने भी उस छेद पर जहा स यह गोली आयी थी, निशाना लगा कर अपनी बन्दूक चलाई। गोली इस्माइल के सिर म लगी। वह मरा और उसकी बदूक नीचे गिर गई।

इस्माइल के मारे जान से बन्दूकची बहुत घबराये। जयमल राठोड द्वारा सात्वना दन पर उनको धीरज बधा और वे वस ही मुगलो का शिकार करते रहे।

पुन राजा टोडरमल और कासिम खा ने एक बडा साबात तयार किया। उसक ऊपर अच्छे-अच्छे महल और मकान बन थे। उससे शाही फौज का बडा बचाव हुआ। अब वे निर्भय होकर किल वालो पर तीर और बदूक मारन लगे। अब लडाई रात दिन बराबर चलती रहती थी। लोगो को खाने पान का समय नही मिलने से उनकी जान पर आ बनी थी।

चत्र वदी १०१ को बादशाह की सम्पूर्ण सेना ने किले के ऊपर हमला किया। गोला की मार से दीवारो म सूराख हो गय। किल वाले भी खूब लडे। यहा तक कि लडते-लडते आधी रात हो गयी। उस वक्त व आश्चर्यजनक कुशलता और काय क्षमता दिखा रह थ। व दुश्मनो से लडत थे और दीवारो की दरारो म रुई घास तल और लकडी भी भरत जात थ ताकि दुश्मनो के पहुँचन पर उसम आग लगा कर उनको पास नही आन दें।

राव जयमल राठोड प्रति दिन सभी मोरचो का निरीक्षण करता था और लडने के लिये राजपूतो का उत्साह और साहस बढाता था। इसी काम म एक बार वह एक दीवार की दरार म स मशाल की रोशनी म बादशाह को भी नजर आ गया जो किले की तरफ निशाना लगाय बठा था। उसी समय बादशाह ने एक सरदार को देखा जो हजार मखी कवच पहिन खडा था। बादशाह अकबर ने उस पर अपनी बन्दूक सग्राम स गोली चलायी। और राजा भगवतदास और शुजाअत खा स कहा कि मुझे अपने निशान

---

१ रविवार फरवरी २२ १५६८ ई०। दुर्ग पर अकबर का अधिकार मगलवार फरवरी २४ १५६८ ई० को हुआ था। (स०)।

पर पूरा विश्वास है। यह गोली अवश्य निशाने पर लगी है।" खानजहा ने निवेदन किया कि "मैंने इस व्यक्ति को बहुत बार इस जगह देखा है। यदि अब नही दिखाइ दे तो समझ लेना चाहिये कि यह मारा गया।'

उन लोगो के ये विचार सही निकले। अकबर की बन्दूक की गोली से राव जयमल का काम तमाम हो गया। राव जयमल के मारे जाने से किले वाले निराश हो गये। उन्होंने किले के बचने की आशा छोड कर जगह २ औरतो को आग मे जलाना शुरू कर दिया क्योंकि उनकी इज्जत और आबरू जालिम दुश्मनो के हाथ से खराब नही होने देना चाहते थे। इस जौहर की जलती हुइ आग बादशाही सेना मे भी दिखाई दी। इसको देख कर वहा तरह-तरह के विचार होने लगे। उसी समय राजा भगवतदास ने कहा कि यह जौहर की आग है। हम लोगो मे यह परम्परा है कि जब राजपूत मरने को तैयार हो जाते हैं तो अपनी स्त्रियो बच्चो को जौहर की आग मे जला देते हैं। अत इस आग से यह तो समझ लेना चाहिये कि किले का कोई उत्तरदायी बडा सरदार मारा गया है।

तीन जगह पर जौहर हुआ। पहला सिसोदिया फत्ता जगावत के घर। दूसरा राठाडो के डेरे मे और तीसरा चौहानो के मकानो मे ईश्वरदास के निरीक्षण मे। इसमे सकडो औरते आग मे जीवित जल मरी।

जौहर के बाद राजपूतो को लड मरने के अतिरिक्त कोई काम नही था। अब वे जीने से निराश हो चुके थे।

उन्होने किले के दरवाजे खोल दिये। शत्रुओ की प्रतीक्षा मे घरो और मन्दिरो के दरवाजो पर नगी तलवारें ले कर बैठ गये। अब फत्ता सिसोदिया ने इस सेना का नेतृत्व अपने हाथ मे लिया। केसरिया कपडे पहन कर उसने स्वय भी खूब अमल पानी किया और दूसरे राजपूतो को भी कराया। यह उनकी अन्तिम मनुहार थी।

रात का अधेरा तोपो बदूको और जौहर के धुए से डरावना हो गया था। दिन निकलने वाला था। वह प्रलय के दिन से कम नही था जिसके वास्ते हजारो अच्छे २ सूरमा सरदारो की कीमती जानें मौत की ?? रही थी।

ज्यो ही दूर का तड़का हुआ। बादशाह की फौज ने किले म प्रवेश किया। बहादुर राजपूतो ने अब उसको अपनी छाती की दीवारो से रोका। यह रोक किले की दीवारो से भी मजबूत थी। सेना का आगे बढ पाना कठिन हो गया। जिस उत्साह स आक्रमण किया उस उत्साह से आगे नही बढ पा रहे थे। अब बडी कठिनता से एक-एक कदम आगे बढ रहे थे। उधर बादशाह को उदयसिंह की सेना के आने का भय था। अत बादशाह जल्दी म जल्दी दुर्ग म पहुँच जाना चाहता था। अत सेना पर आगे बढने के लिये दबाव डाल रहा था परन्तु सेना आगे कैसे बढे ? उसको तो मृत्यु का सामना करना पड रहा था।

अत मे बादशाह अकबर ने हाथियो की सहायता के बिना राजपूतो को हटाना असभव जान कर हाथियो को छोडने का आदेश दिया। उसी वक्त कई मस्त हाथी किले म छोडे गये। उनके पीछे पीछे स्वय बादशाह भी सवार होकर चला। इन हाथियो न छूटते ही बहुत स आदमियो को रौंद डाला। परन्तु राजपूतो का जोर-शोर उससे कुछ भी कम नही हुआ बल्कि अब वे हाथियो स भी वैसे ही लडने लगे जैसे मुगलो स लडते थे। उनकी उस वक्त की बहादुरी और वीरता का वर्णन आज भी बहादुर और स्वदेश प्रेमी लोगो के दिल मे जोश पैदा किये बिना नही रहता। जैसे-ईश्वरदास चौहान न मधुकर हाथी के पास जाकर पूछा कि इसका क्या नाम है ?' जब महावत ने नाम बताया तो एक हाथ से उसका दात पकड लिया और दूसर हाथ से जमधर मार कर कहा कि क्यो गजराजजी हमारा मुजरा तुम्हारे कदरदान बादशाह स कहोगे ? इसी तरह एक और राजपूत एक हाथी को देख कर उस पर झपटा और तलवार मार कर उसकी सूड काट दी। उस खूनी हाथी न सूड कट जाने पर भी पन्द्रह राजपूतो को मारा जिन्हे बीस को वह पहिले ही मार चुका था।

कुछ राजपूत मिल कर बादशाही फौज से लडने जाते थे। गरुड नामक हाथी लड़ाई के कोलाहल स चमक कर उन पर जा पडा और वे सब उसस लड कर काम आये।

सबलिया नामक हाथी भी कई राजपूतो को मार चुका था। उसका बदला लेने के वास्ते एक राजपूत न दौड कर उसके तलवार मारी।

उसने उस राजपूत को सूंड में लपेट लिया। उसी क्षण दूसरे राजपूत ने झपट कर तलवार का एक हाथ मारा। हाथी उसकी तरफ दौड़ा। पहिले वाला राजपूत उसकी सूंड से निकल कर फिर संभला और उसने हाथी के एक तलवार मारी।

ये सब १५० हाथी थे। जब इनसे भी राजपूत नहीं दबे तो बादशाह ने ३०० मस्त हाथी और छोड़े। इन हाथियों की रेल-पेल से हजारों आदमी पागल हो गये। अब राजपूतों को लाचार पीछे हटना पड़ा। आखिर वे कब तक उन कालों बलाओं से लड़ते। उनका समूह तितर बितर हो गया। उनमें से कुछ तो मंदिरों में मूर्तियों की सुरक्षा के वास्ते जा बैठे और बहुत से अपने मकानों के आगे नंगी तलवारें लेकर जा खड़े हुए और शेष एक स्थान पर एकत्रित हो गये जिनमें से दो-दो और चार-चार बरछे और बल्लम ले कर दुश्मनों पर जाते थे और अनेकों को मार कर काम आते थे।

हाथियों की कारवाई अब तक जारी थी और मुगल सैनिक उनके पीछे-पीछे आगे बढ़ रहे थे। फत्ता सीसोदिया ने इस सम्पूर्ण स्थिति को देखा तो आग बबूला हो गया। उसने अनेक बहादुर राजपूतों के साथ बढ़ते हुए एक हाथी से मोहरा किया। वह उसमें इतना लड़ा कि जख्मों से चूर होकर जमीन पर गिर पड़ा। उसको बचाने के प्रयत्न में कई राजपूत मारे गये। उस समय बादशाह गोविन्द श्यामजी के मंदिर के पास पहुँचा था। उसी समय महावत फत्ता को हाथी की सूंड में लपेट कर अकबर के पास लाया और राजपूतों की बहादुरी और शूर वीरता का सारा हाल अर्ज किया। फत्ता कुछ समय बाद मर गया।

फत्ता के मारे जाने से राजपूत और भी उत्तेजित हो गये तथा बड़ी तेजी के साथ वे अकबर की सेना पर तलवारों के प्रहार करने लगे। उनको दबाना कठिन समझ कर बादशाह ने कत्ल आम का आदेश दे दिया। उस कत्ल आम में निर्दोष प्रजा भी कत्ल होने लगी। इस प्रकार तड़के से दोपहर तक ३०,००० आदमी रैयत और राजपूतों में से मारे जा चुके। उसके बाद लड़ाई बंद हो गई।

पठान बंदूकची जिनके ऊपर बादशाह बहुत ही क्रोधित था एक आश्चर्यजनक चालाकी से जान बचा कर सुरक्षित निकल गये। जब शाही

फौज किले वालों को मारने बाधा और ढूंढने में लगी हुई थी उसी समय उन्होंने अपनी स्त्री बच्चों को कैदियों की तरह बांधा और जलती हुई तलवारों में से लेकर चलते बने। शाही सैनिक इस भ्रम में रहे कि ये हमारी ही सेना के सैनिक हैं जो किले वालों की स्त्रियों और बच्चों को बंदी बना कर लेकर जा रहे हैं। ये सब ५००० व्यक्ति थे। विजय के बाद बादशाह उनको ढूंढते ही रहे परन्तु उनका कुछ भी पता नहीं लगा।

यों तो किले में स्थान स्थान पर आदमी मारे गये थे परन्तु तीन जगह बड़ी भारी संख्या में मारे गये थे। प्रथम महाराणा की ड्योढ़ी पर जहां बहुत से बहादुर और शूरवीर राजपूत थे जो दो-दो तीन तीन बाहर निकल कर लड़ते रहे थे। दूसरे महादेव जी के मंदिर में और तीसरे रामपुरा दरवाजे पर।

छः महीने में अकबर बादशाह चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर पाया था। अलाउद्दीन खिलजी ने भी इतने समय में अर्थात् छः महीने और सात दिन में—श्रावण सुदि ५, १३६१ वि०[1] को दुर्ग पर आधिपत्य जमाया था। उसके समय में इतने अधिक व्यक्ति नहीं मारे गये थे, जितने अकबर जैसे सुल्ह से डरने वाले के समय में मारे गये।

ऐसी लोक मान्यता प्रसिद्ध है कि उक्त साका बहुत बड़ा हुआ था। उसमें इतने अधिक व्यक्ति मारे गये थे कि उनके शरीर से ७४॥ मन जनेऊ उतरे थे। उस दिन से ७४॥ का अंक तलाक हो गया है। वह पत्रों के लिफाफों पर लिखा जाता है ताकि गैर आदमी खोल कर न पढ़ सके जो पढ़े तो उसको चित्तौड़ मारने का पाप लगे।

चित्तौड़ मारने के पाप की शपथ भी उसी वक्त से चली है। अगर किसी को किसी काम को करने से रोकना होता है तो कहते हैं कि जो तुम ऐसा करोगे तो तुमको चित्तौड़ मारने का पाप लगेगा।

---

१ बुधवार जुलाई ८ १३०४ ई०। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार सोमवार अगस्त २६ १३०३ ई० को हुआ था। खजाइनुल फुतूह (अंग्रेजी अनुवाद पृ० ४८) (स०)।

यह अब तक किसी को नही मालूम हुआ है कि वह कौन ऐसा निर्मोही आदमी था जिसको उस वक्त इन जनेउओ को उतारने और तोलने का समय मिला था।

बादशाह तीन दिन चित्तौड में ठहरा था। चौथे दिन आसफ खा को किले में छोड कर अजमेर की तरफ चला गया। वहाँ उसने चित्तौड की लूट में से एक चादी का दीपक, भाड और एक बडा नक्कारा ख्वाजा साहिब की दरगाह पर चढाया।

इस साके से राजपूतो का नाम दुनियाँ में रोशन हो गया। मित्र शत्रु ने उनकी बहादुरी और साहस की प्रशसा की जिसके लिये हमने बादशाही तवारीखो के विवरण को अधिक विश्वसनीय समझ कर उन्ही का यह खुलासा लिखा है।

बादशाह के लौट जाने की खबर सुन कर महाराणा गुजरात से मेवाड आया। चित्तौड की भागी हुई रयत जो उदयपुर में आकर बसी थी उसको सात्वना दी और देबारी के घाटे को मजबूत किया ताकि मुगलो की फौज नही आ सके। तदनन्तर कु भलगढ में जाकर अपने कबीलो से मिले और बहुत दिनो तक चित्तौड लेने के लिये प्रयत्न करता रहा। परतु बादशाह ने वहा सुरक्षा की पूरी व्यवस्था कर रखी थी। अत महाराणा को कोई अवसर नही मिला।

सवत् १६२५ (१५६९ ई०) में अकबर बादशाह ने रणथभोर दुर्ग को घेरा। आमेर के राजा भगवतदास के माध्यम से बादशाह से मिल कर राव सुरजन ने किला सौप दिया। महाराणा का स्वामित्व और सहायता को भूल कर उसने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली। अपने लिये जो शर्ते की उनमें से एक यह भी थी कि महाराणा से लडने के वास्ते वह नही जावेगा। परतु राव सुरजन ने महाराणा का किला रणथभोर बादशाह को दे दिया जिसके कारण उसको किसी ने अच्छा नही कहा।

अब हम यहा वह विवरण भी लिखे देते है जो कुछ अन्तर के साथ अकबर बादशाह और बू दी की तवारीखो में लिखा गया है।

'अकबर नामा' में लिखा है कि वह किला सलीमशाह सूर के गुलाम जूभार खां के पास था। जब अकबर बादशाह का राज्य हुआ तो उसने यह सोचा कि अब किला मेरे पास नहीं रह सकेगा और किसी दूसरे आदमी को सौंप कर वह स्वयं अलग हो जावे। वहां से कुछ दूरी पर ही राणा उदयसिंह का सेवक राव सुर्जन रहता था। जूभार खां ने वह (रणथंभोर) किला उसको बेच दिया। राव सुर्जन ने वहां अपने रहने के लिये महल बनवाये और सम्पूर्ण क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने संवत् १६१५ (१५५८ ई०) में हबीब अली खां को कुछ सेना के साथ भेजा था। राव सुर्जन ने किले के भीतर से लम्बे समय तक लड़ाई की फिर बैराम खां वजीर का काम बिगड़ जाने से वह मुगल फौज वहां से उठ गई और दुर्ग पर अधिकार नहीं हो सका।"

'मुन्तखबुत् तवारीख' में मुल्ला अब्दुल कादिर (बदायूनी) ने लिखा है कि वह किला अदली के गुलाम सग्राम खां के पास था। अकबर बादशाह ने गद्दी पर बैठने के कुछ दिनों बाद हिन्दू बेग वगैरह कई अमीरों को उस पर भेजा, मगर कुछ काम नहीं निकला। फिर हबीबुल्ला खां को भेजा गया। वह एक वर्ष तक किले को घेरे रहा। अंत में सग्राम खां ने कहलाया कुछ खर्च मुझे दो तो मैं किला सौंप दूं। बादशाही अमीरों के पास रुपया नहीं था। इस लिये कुछ दिनों के बाद भेजने का वादा कर उन्होंने घेरा उठा लिया। परंतु रुपया नहीं पहुँचा और उधर सग्राम खां ने देखा कि कभी न कभी यह मुझ से छीन लिया जावेगा। इसलिये उसने यह किला बहुत सा रुपया लेकर राव सुर्जन को बेच दिया। उसने किलेदारी का सामान और बहुत सी सेना तैयार करके आस पास के परगने भी दबा लिये।

फिर हबीबुल्ला खां वगैरह अमीर भी कुछ समय तक रणथंभोर के लिये जूझार करके अपनी अपनी जागीरों में चले गये।

सं० १६१५ में हुसेन खां वगैरह कई प्रसिद्ध अमीर रणथंभोर के ऊपर तैनात हुए। उन्होंने शिवपुर पहुँच कर बड़ी लड़ाई की जिससे राव सुर्जन को मुकाबिले से हट कर किले के अन्दर जाना पड़ा। इसी समय बैराम खां का काम बिगड़ जाने से ये लोग घेरा छोड़ कर ग्वालियर को चले गये।

बूंदी की तवारीख वंश-भास्कर में लिखा है कि "सामन्तसिंह हाडा बूंदी के राव सुरताण से अप्रसन्न होकर सलीम शाह (सूर) के पास चला गया था। बादशाह ने उसको रणथंभोर का किलेदार बना दिया। संवत् १६११ में राव सुर्जन बूंदी का स्वामी हुआ। तब सामन्तसिंह ने उसको लिखा कि अब यह किला अपने अधिकार में कर लेना चाहिये। राव सुर्जन सं० १६२० (सन् १५६३ ई०) में सेना लेकर रणथंभोर पहुँचा और किले पर अधिकार करके सामन्तसिंह को ही अपनी तरफ से वहां रखा। जब राव सुर्जन ने यह किला बादशाह को सौंपा तो सामन्तसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह लड़ा और मारा गया। तदनन्तर ही रणथंभोर पर बादशाह का अधिकार हुआ।

उपर्युक्त विभिन्न वर्णनों का भावार्थ तो एक ही है परन्तु विवरण और वर्षों (समय) में भिन्नता है। ऐसा अन्तर तवारीखों में प्रायः हुआ करता है।

(जैसलमेर के) रावल हरराज ने अपनी पुत्री का विवाह राणा उदयसिंह से करने का तय किया था परन्तु बाद में अपना निश्चय बदल दिया और उक्त कन्या का विवाह बादशाह (अकबर) से करना चाहा। लड़की को यह स्वीकार नहीं था। उसने महाराणा को कहलाया कि 'मुझे इस नर्क में जाना मंजूर नहीं है।' इस पर महाराणा संवत् १६२६ (१५६९ ई०) में कुछ सेना लेकर जैसलमेर को रवाना हुआ। मगशिर सुदी ३[1] को भाद्राजून में मारवाड़ का राव चन्द्रसेन भी उसके साथ हो गया। बादशाह ने रावल को महाराणा से लड़ाई करने का आदेश दिया था। अतः राणा उदयसिंह जब जैसलमेर पहुँचा तो रावल ने दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये और लड़ने की तैयारी की। लेकिन रावल ने यह बहाना बनाया कि आप (महाराणा) बिना बुलाये आये, इस कारण मैं शादी नहीं करता। महाराणा के पास किला तोड़ने का सामान नहीं था। इसलिये पीछे लौट आये कि पुनः अधिक फौज और तोपखाना लेकर आवेंगे। पौष वदी ११[2]

१ शुक्रवार नवम्बर ११ १५६९ ई०।

२ रविवार दिसम्बर ४ १५६९ ई०। चन्द्रसेन ने अपनी लड़की का विवाह पौष सुदी १ १६२६ वि० तदनुसार शुक्रवार दिसम्बर ९ १५६९ ई० को किया था। मारवाड़ परगना री विगत भाग १ पृ० ६०। (सं०)।

को भाद्राजून पहुँच कर राव चन्द्रसेन ने अपनी लडकी कमवती बाई का विवाह महाराणा स कर दिया। महाराणा राठाड राणी को लेकर उदयपुर गय।

बादशाह खबर सुन कर दूसरे वर्ष अर्थात् सवत् १६२७ (सन् १५७० ई०) म उदयपुर जोधपुर और बीकानेर के राजाओं पर निगरानी के वास्ते कई महीने तक अजमेर और नागोर म रहा और जब वहा राव चन्द्रसेन और राव कल्याणमल उपस्थित हो गये तो निर्भीक होकर बादशाह मुलतान के मार्ग से लाहोर चला गया और आम्बेर के राजा भगवन्तदास को जैसलमेर भेज कर डोला मगवा लिया। इस तरह बादशाह के विरुद्ध राठोड-सीसोदिया का एक करने का महाराणा का उद्देश्य बादशाह की बुद्धिमत्ता के कारण पूरा नही हो सका।

महाराणा अपने जीवन के अन्तिम दिनो म गोगुदा रहता था और वही फागुण सुदी ११ १६२८ वि०[1] को उसकी मृत्यु हो गयी। उसने अपनी ५० वर्ष की अवस्था म प्रारम्भ से अत तक जमाने का बहुत सा अच्छा बुरा हाल देखा फिर भी उसस कोई सीख नही ली। यही कारण था कि अपने पिता की तरह वह भी मरते वक्त अपने पुत्रों के लिये झगडा छोड गया। परन्तु सरदारो न बुद्धिमत्ता स उसी वक्त उसको मिटा दिया नहीं तो मेवाड का राज्य बाहरी दुश्मनो स ज्यादा गृह-कलह से ही विनष्ट हो जाता।

महाराणा उदयसिंह की औलाद से सीसोदिया म एक नयी खाप (शाखा) राणावतो का प्रारभ हुई वही अब तक राज्य की उत्तराधिकारी समझी जाती है।

महाराणा का उच्च कुल होने के कारण उसका विवाह लगभग प्रत्येक उच्च जाति के राजपूतो के यहा हुआ था। परन्तु उसकी राणियो और सतानो की गिनती म भिन्नता मिलती है। एक वर्णन दूसरे से भिन्न है। टाड न महाराणा के पुत्रो की सख्या २५ तक लिखी है। उनम स

१ रविवार फरवरी २४, १५७२ ई०। उपयुक्त तिथि सही नही है। उदयसिंह की मृत्यु फागुन सुदी १५ तदनुसार गुरुवार फरवरी २८ १५७२ ई० को हुई थी। ओझा० उदयपुर० १ पृ० ४२१। (स०)।

महाराणा का कुंवर जगमाल से जो बीकानेर के राव लूणकरण का नवासा (दोहित्र) था, बहुत स्नेह था। अतः अपने अंतिम दिनों में उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रताप के स्थान पर जगमाल को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। और मरने के समय सरदारों और अमीरों से भी उसको गद्दी पर बठाने के वास्ते कहा। उदयपुर में परम्परा है कि एक राणा के मरते ही दूसरा गद्दी पर बैठ जाता है। फिर उसकी स्वीकृति मिलने पर ही स्वर्गीय राणा को दाह संस्कार के वास्ते ले जाते हैं। अतः जगमाल भी इसी परम्परा के अनुसार गद्दी पर बैठ गया। जब महाराणा का दाह संस्कार के वास्ते ले गये तब अखैराज सोनगरा ने रावत किशना से कहा कि भला[1] आपने वृद्ध होकर यह अन्यायपूर्ण कार्य कैसे करवा रखा है। उसने जवाब दिया कि जब एक बीमार जो मरने को था दूध मांगा तुमने क्यों नहीं दिया? अखैराज चुप हो रहा। लेकिन वहां से लौट कर रावत किशना और ग्वालियर के राजा रामसाह रमोद घर में पहुँचे। वहां प्रत्येक ने एक-एक हथियार जगमाल का ले लिया और धारे से उसको गद्दी के सामने ला बैठाया और कहा कि आपका स्थान यहां है। आप गलती से अपने भाई की जगह बैठ गये थे। प्रतापसिंह को जो बाहर जाने के वास्ते घोड़े पर जीन कस रहा था लाकर कमर में तलवार बांधी और गद्दी पर बैठा कर सब ने खुशी मनाई।

जगमाल अकबर बादशाह के पास चला गया। बादशाह ने उसे ससम्मान रखा। उसका विवाह सिरोही के राव मानसिंह की पुत्री में हुआ था। इसी हक से सम्वत् १६३८ (सन् १५८१ ई०) में जब बादशाह ने राव मानसिंह के उत्तराधिकारी राव सुरताण को गद्दी से हटाया तो सिरोही राज्य जगमाल को प्रदान किया। जालोरी एतमाद खां और राव रायसिंह राठौड को उसकी मदद पर भेजा। उन्होंने जगमाल का राज्याधिकार सिरोही में करवा दिया। सुरताण आबू की तरफ चला गया। फिर एतमाद खां तो जालोर में उपद्रव होने की खबर सुन कर वहां गया। जगमाल सुरताण देवड़ा को निकालने का प्रयत्न करने लगा। कार्तिक सुदी ११ १६४०[1] को उसका डेरा गांव दताणी में था। वहां एकाएक राव सुरताण ने आक्रमण किया। तब जगमाल और राव रायसिंह उसमें लड़ कर वहां पर काम आये।

---

१ गुरुवार अक्तूबर १७ १५८३ ई०।

जगमाल का जन्म आषाढ वदी ५ १६११ वि०[1] को हुआ था। उसके पुत्र रामसिंह और श्यामसिंह वगैरह थे।

राव रायसिंह राठोड के वक्त में तो जोधपुर के राजा उदयसिंह और सूरसिंह ने कई बार सिरोही को लूटा। राव सुरताण के कई भाई-भतीजों को पकड़ा और मारा। इसी कारण सम्वत् १६५२ (१५९५ ई०) में राव सुरताण ने हार कर राजा सूरसिंह को बेटी देना करके सुलह कर ली। परन्तु जगमाल के खून के वास्ते महाराणा प्रतापसिंह ने राव सुरताण से कुछ भी नहीं कहा बल्कि अपनी पोत्री का विवाह और उससे कर दिया। इस बात से सगर जो जगमाल का सगा भाई था बुरा मान कर अकबर बादशाह के पास चला गया। बादशाह ने उसको राणा का खिताब दिया। बादशाह उसको चित्तौड का राज्य भी देना चाहता था परन्तु सल्तनत के दूसरे आवश्यक कार्यों से अवकाश नहीं मिल पाया। उसके बाद जब जहांगीर बादशाह गद्दी पर बैठा तो राणा सगर ने मेवाड को विजय करना बहुत सुगम बता कर महाराणा अमरसिंह के ऊपर चढाई करवाई। जहांगीर बादशाह की सगर के ऊपर बहुत कृपा थी। उसने चित्तौड नागौर और अजमेर वगैरह कई परगने उसको दिये थे। सम्वत् १६७१ (१६१५ ई०) में महाराणा अमरसिंह ने शाहजादा खुर्रम के पास उपस्थित होकर बादशाही आधीनता मान लिया था। बादशाह ने चित्तौड और राणा का खिताब सगर से वापस लेकर महाराणा को दिया और सगर को रावत का खिताब देकर पूर्व में जागीर दी। सगर ने पुष्कर में वराह का मन्दिर बनाया जो अब तक विद्यमान है। उसका जन्म भाद्रपद सुदी ३ १६१३ वि०[2] का हुआ था। उसके पुत्र हिन्दूसिंह और मानसिंह वगैरह थे।

शक्तिसिंह महाराणा उदयसिंह का द्वितीय पुत्र और टोडा के राव पृथ्वीराज सूरसेनोत का नवासा (दौहित्र) था। वह अपने पिता के जीवन काल में अकबर बादशाह के पास रहा करता था। उसका महाराणा प्रतापसिंह से मनमुटाव था। मगर जब सम्वत् १६३३ में महाराणा प्रतापसिंह ने बादशाही सेना से जो कुंवर मानसिंह कछवाहा के नेतृत्व में मेवाड पर

१ सोमवार मई २१ १५५४ ई०।

२ शनिवार अगस्त ८ १५५६ ई०।

चन कर आयी थी युद्ध करत पराजित हुआ और दो मुगल महाराणा को मारने के लिये उसके पीछे दौडे, तब शक्तिसिंह के दिल म भातृत्व का स्नेह उमड पडा यद्यपि वह उस समय शाही सेना के साथ था। और वह भी उन सवारो के साथ हो गया। मार्ग मे उन मुगल सवारो को मार कर महाराणा से मिला। महाराणा उसके इस काय से बहुत खुश हुआ और उसको राणा वल्लभ का खिताब दिया। उसके वश म भी एक बडी खाप शक्तावत सीसोदियों की है।

महाराणा उदयसिंह के अन्य पुत्र विशेष प्रसिद्ध नही है।

टाड ने अपनी पुस्तक म महाराणा उदयसिंह की बहुत बुराई की है। उससे हमारा कोई सबध नही है, क्योंकि अपनी २ राय है। फिर भी उसमे जो भूलें हुई हैं वे अवश्य ही ध्यान देने योग्य हैं।

जैसे उसने महाराणा उदयसिंह के वास्ते लिखा है कि वह राणा सागा का बेटा था जो उसके मर पीछे पैदा हुआ था (पृ० ३३१ तरजुमे टाड राजस्थान नवल किशोर के छापे खाने की छपी हुई) और बनवीर की गद्दी नशीनी के वक्त ६ वष का था। धारी उसको मेवे की टोकरी म पत्तो से छुपा कर ले गया। वह सोया हुआ था। धाय उसको लेकर कु भलमेर पहुँची। वहा के हाकिम आशाशाह ने भानजा बना कर रक्खा और ७ वष तक वहा छुपा रहा (पृ० ३३६)। उदयसिंह सवत् १५९७ (सन् १५४१ ४२ ई०) म गद्दी नशीन हुआ (पृ० ३३९) और उसी साल (१५४२) म अकबर भी पैदा था (पृ० ३४०)। सो यह बिलकुल गलत है क्योंकि महाराणा उदयसिंह अपने पिता के जीवन काल म उसके मरने के ८ वष पहिले भाद्र पद सुदी ११ १५७८ वि०[1] को पैदा हुआ। वह बनवीर के सिंहासनारूढ होने के वक्त १४ वष का था। महाराणा सागा के अपने जीवनकाल म उसको और उसके बडे भाई विक्रमाजीत को रणथभोर का किला दे दिया था और वे वहा रहते थे। महाराणा रत्नसिंह के वक्त म चित्तौड आये और राणा विक्रमाजीत ने उनको कु भलमेर का किला दिया था। उदयसिंह एक बार सुलतान बहादुर गुजराती के पास भी गया था। बनवीर के समय म

१ मगलवार अगस्त १३ १५२१ ई। टाड राजस्थान आक्सफड सस्करण० पृ० ३६१ ३६७-९।

उसको आशाशाह का भानजा बनने की कोई आवश्यकता नहीं थी और न ही वह इस तरीके से छुप सकता था।

दूसरा उदयसिंह का राजसिंहासन पर बैठने और अकबर बादशाह के जन्म का वर्ष एक ही नहीं हैं क्योंकि अकबर बादशाह का जन्म महाराणा के गद्दी पर बैठने के करीब दो वर्ष बाद कार्तिक सुदी ७ सं० १५९९ वि०[1] को हुआ था। तीसरे उसने (टाड) महाराणा की आयु ४२ वर्ष लिखी है। वह भी गलत है, क्योंकि महाराणा की ५० वर्ष की अवस्था में मृत्यु हुई थी। पत्ता सीसोदिया का १६ वर्ष की आयु में काम आना लिखा है परन्तु उस समय उसकी आयु इससे कहीं अधिक थी। उसके कई पुत्र हो गये थे जिनमें से तीन अर्थात् कल्ला, शेखा और करण महाराणा प्रताप के विपत्तिकाल में साथ रहने के योग्य हो गये थे।

---

१ रविवार अक्तूबर १५ १५४२ ई०।

(६) महाराणा प्रताप

सोरठा

हिन्दूपति परताप पत राखी हिंदूवान की।
सह विपत सताप सत्य शपथ कर आपना ॥

महाराणा प्रताप का जन्म जेठ सुदी १३ सं० १५७६[1] का हुआ था। फागुण सुदी १५ स० १६२८[2] को गाव गोगुन्दा म वह गद्दी पर बठा। इस उत्सव म शामिल होने के लिये जाधपुर का राव चद्रसन भी आया था। चार महीने बाद बादशाह अकबर न गुजरात फतह करन के लिय चढाई की। वह श्रावण बदी ७[3] का फतहपुर स रवाना होकर अजमेर मेडता और नागार

---

१ मुशी देवी प्रसाद ने उक्त तिथि 'अमर काव्य' के आधार पर दी है परन्तु सही तिथि ज्येष्ठ सुदी ३ है। तदनुसार सोमवार मई १० १५४० ई०। नणसी० १ पृ० ६८ परगना० ३ पृ० ३४१ ओझा० प्रताप०, पृ० १ महाराणा० पृ० १०। (स०)।

२ गुरुवार फरवरी २८ १५७२ ई०। वीर०, २ पृ० १४५ १४६।

३ बुधवार जुलाई २ १५७२ ई०।

होता हुआ तीन महीने बाद मगसर वदी १०[1] को सिरोही पहुँचा। इस बीच में महाराणा ने अपने राज्य की सुरक्षा के वास्ते सेना एकत्रित कर ली थी। उसका यह भी विचार था कि जब बादशाह गुजरात पहुँच कर वहा की लड़ाइयों में व्यस्त हो जावेगा, तब उसके अधिकार क्षेत्र पर धावा करके मेवाड़ की लूट-मार का बदला लेगा। इस बात का पता बादशाह को चल गया। इसीलिये जब वह सिरोही से गुजरात को जाने लगा तो बीकानेर के राव रायसिंह को एक विशाल सेना देकर उसकी देख-भाल के लिये मारवाड में छोड़ गया। और जोधपुर जो इस समय खालसा (बादशाही साम्राज्य) में था रायसिंह को उसकी जागीर में दे दिया। अत अबुल फज़ल ने इस सन्दर्भ में महाराणा का नाम अकबर नामा में नहीं लिखा है। लेकिन निज़ामुद्दीन अहमद ने अपनी पुस्तक तबकात-इ अकबरी में इस तरह लिखा है कि 'इस मंजिल (सिरोही) पर बादशाह ने यह उचित समझा कि अपने सेवकों में से एक को जोधपुर में नियुक्त करे ताकि उस सीमा को मजबूत कर गुजरात का मार्ग चालू रखे जिससे राणा कीका से किसी को नुकसान नहीं पहुँचने दे। यह काम रायसिंह बीकानेरी को मिला। बहुत से बादशाही नौकर उसके साथ नियुक्त हुए। उस सूबे के अमीरों और जागीरदारों के नाम आदेश हुआ कि जिस वक्त रायसिंह किसी काम के वास्ते जावे तो उसकी सहायता के लिये उपस्थित हो जावें।[2] अबुल फज़ल का लिखना है कि इस मंजिल में राव रायसिंह और दूसरे बहुत से साथ वालों को आदेश हुआ कि जोधपुर और सिरोही की सीमा में रह कर देखते रहें कि विद्रोही लोग गुजरात में निकल कर बादशाही क्षेत्र में कोई उपद्रव नहीं करने पावें।[3]

इस व्यवस्था के बाद बादशाह गुजरात पहुँच कर लगभग एक वर्ष वहा रहा और इस अरसे में सम्पूर्ण गुजरात विजय करके जब वहा से वापस लौटा तब पहिले ज्येष्ठ सुदी १२[4] १६३० वि० को अजमेर और दूसरे ज्येष्ठ सुदी ४[5] को फतहपुर में अकबर ने प्रवेश किया। परन्तु तीन महीने बाद उसे पुनः वापस गुजरात जाना पड़ा।

---

१ शुक्रवार अक्तूबर ३१ १५७२ ई०।
२ तबकात० (अ० अ०) २ पृ० ३७३।
३ अ० ना० (अ० अ०) ३ पृ० ८।
४ बुधवार मई १३ १५७३ ई०।
५ बुधवार जून ३, १५७३ ई०।

कु वर मानसिंह का मेवाड मे आना —

"अकबर नामा" मे लिखा है कि बादशाह ने फतहपुर को लौटते समय आम्बेर के राजा के पुत्र कु वर मानसिंह और राजा गोपालसिंह और जगनाथ वगरह अमीरो को आदेश दिया कि डू गरपुर और ईडर के जागीरदारो को आधीन करते हुए आवे। इसलिय कु वर मानसिंह उधर का काम पूरा कर फतहपुर जाते हुए उदयपुर के पास पहुँचा। महाराणा ने उनकी अगवानी की। बादशाह का खिलअत पहना और कु वर को अपने घर ले जाकर प्रकट मे तो बडे प्यार से महमानदारी की परन्तु वास्तव मे धोखा करने की उसकी इच्छा थी। लेकिन उसके शुभेच्छुको ने उसे एसा करने नही दिया।

राणा ने बादशाही दरबार मे उपस्थित होने के लिये कुछ इकरार और कुछ बहाना करके मानसिंह को रवाना किया और वह भी सत्कार सम्मान करके चला आया।[1]

राज प्रशस्ति मे लिखा है कि भोजन के समय मानसिंह और राणा के मध्य आपस मे मन मुटाव हो गया जिससे मानसिंह बहुत नाराज होकर बादशाह के पास गया।[2]

टाड राजस्थान मे इस अप्रसन्नता का वर्णन अधिक स्पष्ट कर किया गया है। वह इस प्रकार है कि जब खाना (भोजन) आ गया तो मानसिंह ने कु वर अमरसिंह से पूछा कि राणा नही आये। कु वर ने कहा कि उनके सिर मे दर्द है। कु वर (मानसिंह) ऐसा मूर्ख तो था नही जो इस बहाने को नही समझ सकता। उसने कहा कि मैं सिर मे दर्द होने का कारण अच्छी तरह जानता हू परन्तु इसका कोई इलाज नही है। भला यदि हिंदूपति (महाराणा) मेरी मनवार नही करेगे तो कौन करेगा?

महाराणा ने देखा कि जब भेद खुल गया तो अब विशेष आपत्ति करने मे कोई लाभ नही है। इसलिये स्पष्ट कहला भेजा कि मुझको भी आपके अकेले खाने का बडा दुख है मगर क्या करू आपने तुर्क से विशेष मेलजोल करके अपनी राजपूती परम्परा को छोड दिया है।

---

१ अ० ना० (अ० अ०) ३ पृ० ५७।

२ राज प्रशस्ति सर्ग ४ श्लोक २१ २२।

'इसस कुंवर मानसिंह क्रोधित हो उठा। अन्न उसने भोजन के हाथ नहीं लगाया बल्कि कुछ दाने चावल के उठा कर पगडी में रख लिये और चलते समय महाराणा से जो उसको पहुँचाने आ गया था कहा कि 'यदि मैं तुम्हारी शेखी न झाड दूं तो मेरा नाम मान नहीं है।' महाराणा ने नम्रता से जवाब दिया क्या डर है ? जैसे मिलते हो वैसे हमेशा हमसे मिलते रहना। उस वक्त किसी ने गुस्ताखी करके यह भी कह दिया कि अपने फूफा अकबर को भी लेते आना भूलना नहीं।'

जिस जगह पर यह मिजमानी हुई थी वह अपवित्र समझ कर खुदवाई गई। मेवाड के सामन्तों ने भी शुद्धिकरण के लिये स्नान किया और वस्त्रादि बदले।''[1]

मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि 'राणा ने मानसिंह का आना सुन कर सोनगरा मानसिंह अखैराजोत और डोडिया भीम को भेज कर बहुत सी बातें शिष्टाचारी की कहलाई। परन्तु डूंगरपुर के रावल सहसमल ने मानसिंह को रीत भात देख कर कहला भेजा कि 'आप इससे नहीं मिलें। यह आदमी तरहदार (बांका) है। राणा ने उसकी बात नहीं मानी और पेशवाई करके मिले। भोजन के समय नाराजी हुई। मानसिंह बादशाह के पास गया और राणा के ऊपर मुगलों की चढाइयां शुरु हुई। [2]

अकबर बादशाह का गुजरात पर दूसरा आक्रमण और राजा भगवंतदास का महाराणा से मिलना —

बादशाह के एक विद्रोही मिर्जा मुहम्मद हुसेन ने उपद्रव करके बादशाही सूबेदार को अहमदाबाद में घेर लिया। बादशाह भादवा वदी ११, रविवार १६३० वि०[3] को तेज चलने वाली सांडनियों पर सवार होकर नौ दिन में ३००० सवारों से अहमदाबाद पहुँचा। दूसरे दिन[4] लड़ाई के मैदान में विद्रोहियों के २०,००० सवारों को हरा कर अहमदाबाद में प्रवेश किया। अकबर कुछ दिनों वहां ठहरा और आगरा के लिये रवाना होने के पूर्व आम्बेर

१ टाड राजस्थान०, (ओ० सं०), १ पृ० ३९१-३९२।
२ नैणसी (प्रतिष्ठान) १ पृ० ८८।
३ अगस्त २३ १५७३ ई०।
४ सितम्बर २ १५७३ ई०।

के राजा भगवतदास को ईडर के मार्ग से मेवाड होकर आने और उस तरफ के सभी सरदारों को आधीन करने का आदेश दिया। राजा भगवतदास ईडर होकर मेवाड में पहुचा। महाराणा गोगुंदे में पेशवाई करके राजा को अपने निवास स्थान पर ले गया। पूर्ण साज सज्जा के साथ उसका आदर सत्कार किया। राजा के विदा होने के समय अपने योग्य पुत्र अमरसिंह को साथ भेजा और कहा कि अभी तो आप इसको ले जाओ। जब मेरे दिल का संकोच दूर हो जावेगा तो मैं भी दरगाह में उपस्थित हो जाऊंगा।

राजा भगवतदास कार्तिक सुदी[1] में बादशाह के पास पहुँचा और कुंवर को बादशाह से मिलाया।[2]

राजा टोडरमल वजीर का आना —

उन्हीं दिनों बादशाह ने राजा टोडरमल वजीर को गुजरात की जमाबन्दी के वास्ते भेजा था। लौटते वक्त वह मेवाड के मार्ग से लौटा। मार्ग में महाराणा गोगुंदा आकर उससे भी मिला और बहुत शिष्टाचारी की।

अकबर और महाराणा की राजनीति —

उपयुक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि अकबर बादशाह ने चार वर्ष तक महाराणा को अपनी अधीनता स्वीकार कराने के लिये शनैः शनैः प्रयत्न किये। कुंवर मानसिंह वगैरह हिन्दू अमीरों को ईडर की तरफ से आने का आदेश देने का उद्देश्य यही था कि महाराणा को समझा कर अपने साथ दरबार में लावें और उससे भी शाही सेवा स्वीकार करावें ताकि सम्पूर्ण राजपूताना में उसका अधिकार हो जावे। यह बात महाराणा प्रतापसिंह के स्वभाव और इच्छा के बिलकुल विरुद्ध थी और वह किसी भी स्थिति में नहीं चाहता था कि महाराणा सांगा का वह पौत्र बाबर के पौत्र के समक्ष सिर झुकावे। इसीलिये वह हर बार बादशाही सेवा के सदेशों को टाला

१ नवम्बर १५७३ ई०।

२ कुंवर अमरसिंह का साथ जाना साबित नहीं होता। यह केवल अबुल फजल के वर्णन पर आधारित है। अन्य किसी भी ग्रंथ में इसकी पुष्टि नहीं होती। [अ० ना० (अ० अ०) ३ पृ० ९२] (म०)।

ही बातो म टालता रहा था। उसके दिल मे चित्तौड छिन जाने का घाव क्या कुछ कम था, जो अब बादशाह की सेवा स्वीकार करके उसके ऊपर नमक छिडकता। वह तो उसी को पुन प्राप्त करने की चिन्ता मे था, न कि और अपनी स्वतन्त्रता और रही सहा आत भा खो देता।

टाड न लिखा है कि "महाराणा ने चित्तौड के शोक म अच्छे वस्त्र पहनना छाड दिया। डाढी रखना जमीन पर सोना नगाडा सना के पीछे रखना और पत्ता म भाजन करना प्रारम्भ कर दिया था। यही नियम अपने उत्तराधिकारिया क लिये भी बना दिया था और कहा कि जब तक चित्तौड गढ पर पुन अधिकार नही हो जाव वे भी इस नियम का पालन करें।'[1]

मानसिह की चढाई —

बादशाह ने तीन बार अपने प्रतिनिधि भेज कर महाराणा का अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए तयार करना चाहा, परतु कोई सफलता नही मिली। अत चत्र सुदी ५ स० १६३३[2] को कु वर मानसिह को ५००० सवारो और नीच लिखे बडे-बडे अनुभवी सरदारा के साथ अजमर स महाराणा के विरुद्ध रवाना किया।

१ आसफ खा, मीर बख्शी
२ गाजी खा बदख्शी,
३ सय्यद अहमद खा बारहा
४ सैय्यद हाशिम खा बारहा,
५ सय्यद राजू,
६ जगन्नाथ कछवाहा
७ महतर खा
८ मुजाहिद बग
९ राव लूणकरण वगरह।

---

१ टाड राजस्थान० (जा० स०) १ पृ० ३८७।

२ सामवार माच ५ १५७६ इ०। वस्तुत मानसिह सामवार अप्रेल २, १५७६ ई० का अजमेर स रवाना हुआ था। अ० ना० (अ० अ०), ३ पृ० २३६-३७। (स०)।

सना को सुव्यवस्थित करन क लिय युद्ध समय क लिय कु वर मानसिंह माण्डलगढ ठहरा था। महाराणा न यह समाचार सुना कि उसा क एक बडे जमीदार के नतृत्व म मुगल सना उसस लडने के लिय आ रहा है तो वह आग बबूला हो उठा और अपन दुश्मन को माडलगढ म हा दबा दना चाहता था। परतु उसके शुभेच्छुको न महाराणा को माण्डलगढ जाने म रोक लिया।

कु वर मानसिंह के साथ शाही सेना माण्डलगढ स गागुन्दा की ओर रवाना हुई। महाराणा भी कु भलमेर स होकर गागु दा पहुँचा और हल्दीघाटी म शाहा सना से युद्ध किया।

मुतखब-उत्-तवारीख का लखक मुल्ला बदायुनी भी इस अभियान म मानसिंह के साथ था। उसने युद्ध की आखा दखी घटनाओ का वणन दिया है जो अकबर नामा और टाड कृत राजस्थान स अधिक *विश्वसनीय है। अत उसका वणन नीच लिखा जा रहा है —*

महाराणा और मानसिंह की लडाई —

(हल्दी घाटी का युद्ध)

मुल्ला बदायुनी लिखता है कि रबी-उल अव्वल सन् ९८४ क आरम्भ *(ज्यष्ठ क अन्त)*[1] म *मानसिंह ने गोगु दा को फतह किया। जब* मानसिंह और आसफ खा अजमर स[2] कूच करत हुए माडल क माग स हल्दी नामक घाटा पर पहुँच। वहाँ स राणा कीका (प्रताप) का निवास-स्थान गागु दा कवल ७ कास दूर रह जाता है। यहाँ राणा युद्ध क लिय सामन आया। मानसिंह हाथी पर सवार होकर अपना सना के मध्य भाग म खडा हुआ। उसक जनब म ख्वाजा मुहम्मद रफी वदख्शी अता मुराद आदि अय बादशाही योद्धाओ के साथ साभर का राव लूणकरण आदि राजपूत खडे थ। इसकी हरावल म कुछ प्रसिद्ध वीर लडाके योद्धा नियुक्त हुए। सय्यद हाशिम बारहा के नतृत्व म चुन हुए ८० योद्धा हरावल स भी आगे नियुक्त हुए। सेना क वाय पाश्व म सय्यद अहमद बारहा और उसकी

---

१ गागु दा पर मगलवार जून १९ १५७६ इ० को अधिकार हुआ। अ० ना० (अ० अ०) ३, पृ० २८७। (स०)।

२ अप्रेल २ १५७ ई० को वह अजमर स रवाना हुआ था। (स०)।

सैनिक टुकड़ा को नियुक्त किया। काजी खाँ व साकरी के भैया ने सेना का दाहिनी पार्श्व ग्रहण किया। सेना के चन्दावल में महतर खां नियुक्त किया गया।

राणा कीका ३००० सवारों के साथ सेना को दो भागों में विभक्त कर घाटी के पीछे से निकला। सेना के एक विभाग ने जिसका सेनापति पठान हकीम सूर था पहाड़ के पश्चिमी ओर से निकल कर शाही हरावल पर आक्रमण किया।[1] वहां की ऊबड़ खाबड़ जमीन और कटीली झाड़ियों के कारण शाही हरावल में गड़बड़ी फैल गई। इस सेना के राजपूत जिसका मुखिया सांभर का राव लूणकरण था और जिनमें से अधिकांश बायें भाग में थे भेड़ों के झुण्ड की तरह हरावल से भाग कर दाहिनी तरफ के सैनिक दल में जा मिले। इस वक्त (अलबदायुनी) कुछ खास आदमियों सहित हरावल में था। उसने आसफ खां से पूछा कि ऐसी स्थिति में अपने और शत्रु के राजपूतों की पहिचान कैसे की जाय। उसने कहा कि तुम तो तीर चलाना शुरू करो सामने चाहे कोई हो। किसी की भी तरफ के राजपूत मारे जाने से मुसलमानों को लाभ ही है। हम तीर चलाते रहे और हमारा एक भी तीर इस अपार भीड़ में खाली नहीं गया। इस प्रकार हमको विधर्मियों को मारने का पुण्य प्राप्त हुआ।

बारहा के सय्यदों और कुछ स्वाभिमानी राजपूतों ने इस युद्ध में रुस्तम के समान पराक्रम दिखाया और दोनों तरफ के अनेकों सैनिक युद्ध में मारे गये।

राणा की सेना का दूसरा भाग जिसका नेतृत्व महाराणा स्वयं कर रहा था घाटी के मुख्य रास्ते से निकला और वालों या आदि की घाटी के मुहाने से हटा कर शाही सेना के मध्य भाग पर आक्रमण किया। सीकरी के शेखजादे इस आक्रमण के वेग से घबरा कर एकदम युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हुए। भागते समय शेख इब्राहिम के दामाद शेख मंसूर के चूतड़ पर तीर लगा जिसका घाव वर्षों दिनों तक बना रहा।

---

१ सोमवार १८ जून १५७६ को प्रातः युद्ध आरम्भ हुआ। अ० ना० (अं० अ०) ३, पृ० २४५। (स०)।

किन्तु काजी खा मुल्ला (धार्मिक व्यक्ति) था, फिर भी सूरवीरो की तरह कुछ समय तक युद्ध क्षेत्र म डटा रहा। अन्त म उसके दाहिने हाथ पर तलवार का एक घाव लगा। इसके बाद वह युद्ध क्षेत्र म ठहर नही सका और भाग कर सेना के मध्य भाग म चला गया।

जो शाही सैनिक आक्रमण के प्रथम आघात की प्रचण्डता को न झेल कर भागे वे पाच कोस तक ठहर नहीं सके।

युद्ध की गरमा गरमी के समय महतर खा भयकर शोरगुल करता हुआ तथा नगाडे बजाता हुआ चन्दावल के स्थान से आगे बढा। शीघ्रता म आगे बढ़ते हुए उसने यह अफवाह फलाई कि बादशाह अकबर स्वय युद्ध मैदान म पहुँच रहा है। इस अफवाह से भागे हुए बादशाही सैनिको को भी कुछ धैर्य बंधा और वे पुन युद्ध मैदान की तरफ लौट पडे।

ग्वालियर का तवर राजा रामसाह जो प्रसिद्ध राजा मान का पौत्र था इस युद्ध म राणा के आगे रह कर कु वर मानसिंह और उसके सैनिको से ऐसी बहादुरी से लडा जिसका वर्णन नही किया जा सकता। शाही हरावल से भाग कर आसिफ खा आदि अनेक सैनिक सेना के दाहिनी तरफ लड रहे बारहा के सैय्यदो के शरण म आ गये थे। उस समय अगर सय्यद भी युद्ध क्षेत्र से पाव नही जमाते तो बहुत बुरी हार होती।

राणा के हाथी बादशाही हाथियो से भिडे। उनमे से दो प्रसिद्ध जगी हाथी जो तब मस्त थे आपस म लडे। बादशाही हाथियो के फौजदार हुसैन खा ने जो कु वर मानसिंह के पीछे दूसरे हाथी पर सवार था और अपने हाथी पर मानसिंह स्वय महावत की जगह बैठा था ऐसा भयकर युद्ध किया कि उससे ज्यादा किसी अन्य से सभव नहीं था। बादशाही हाथी ने राणा के हाथी से जिसका नाम राम प्रसाद था और जो बहुत प्रचड था भयकर लडाई की। दोनो एक दूसरे को ढकलते रहे। अन्त म राणा के हाथी रामप्रसाद के महावत के अचानक तीर लग जाने से वह जमीन पर गिर पडा। इस समय शाही हाथी का महावत अपने हाथी से कूद कर पलक झपकते ही राणा के हाथी रामप्रसाद पर सवार हो गया। ऐसी फुर्ती अन्य दूसरा कोई नहीं दिखा सकता था।

ऐसी परिस्थिति में राणा युद्ध-क्षेत्र में ठहर नहीं सका और रण-क्षेत्र छोड़ चल पड़ा। उसके निकल जाने से राणा की सेना में अव्यवस्था फैल गई। शाही सेना के प्रसिद्ध शूरवीर योद्धाओं ने, जो मानसिंह की रक्षार्थ उसके चारों तरफ खड़े थे भयंकर युद्ध किया। उनका युद्ध मुल्ला शेरी के शब्दों में हिन्दू मजनद शमशेर इसलाम अर्थात् इस युद्ध में हिन्दू ने अपने हाथों में मुसलमानी तलवार लेकर युद्ध किया।

'इस युद्ध में प्रसिद्ध वीर जयमल मेड़तिया का पुत्र रामदास राठौड़[1] और ग्वालियर का राजा रामशाह अपने पुत्र शालिवाहन आदि सहित वीरता से लड़ते हुए मारे गये। उनके पीछे ग्वालियर राजवंश का कोई भी उत्तराधिकारी शेष नहीं रहा।

महाराणा जब माधोसिंह से युद्ध कर रहा था उस समय उसको तीरों के घाव लगे। इसी समय हकीम सूर भी राणा की सेना के हरावल से भाग कर महाराणा के पास आ गया था।

युद्ध क्षेत्र में दोनों (विरोधी) सेनाएँ आपस में भिड़ गईं अर्थात् अति निकट का नरसंहार होने लगा। ऐसे समय में महाराणा अपनी सेना को छोड़ कर पहाड़ियों में भाग गया।

'यह युद्ध प्रातः आरम्भ हुआ था और मध्याह्न तक चलता रहा। उस समय की असहनीय गर्म हवा के कारण सिर उबलने सा लग गया था। इस युद्ध में ५०० आदमी खेत रहे। उनमें से १२० मुसलमान और बाकी सब हिन्दू थे तथा ३०० से ज्यादा घायल हुए। गर्म हवा के चलने से सैनिकों के हौंसले पस्त हो गये थे। साथ ही वे जानते थे कि राणा पहाड़ के पीछे घात लगाये बैठा होगा यही सोच कर मानसिंह ने पीछा नहीं किया और युद्धोपरान्त वह पुनः अपने पड़ाव पर ही आ गया। और घायल सैनिकों का इलाज करने लगे।

दूसरे दिन मानसिंह वहाँ से कूच करके युद्ध मैदान में प्रत्येक सैनिक को याद करते हुए घाटी से पार हुआ, और गोगुन्दा पहुँचा। वहाँ पर राणा

---

१ यह रामदास जगन्नाथ कछवाहा के हाथों मारा गया था। (स०)।

२ माधोसिंह—यह मानसिंह कछवाहा का छोटा भाई था। (स०)।

के महला के कुछ पहरेदार और मन्दिरा म रहन वाले कुछ पुजारी आदि थे जिनकी कुल गिनती ७० ही रही होगी। अपनी प्राचीन हिन्दू रीति के अनुसार धर्म और इज्जत की रक्षार्थ मन्दिरो और घरो से निकल कर उन्होने युद्ध किया और मारे गये।

राणा द्वारा रात्रि म छापा मारने के भय से ग्रसित शाही सेनानायको ने गोगुन्दा गाव के चारो तरफ गहरा खाई खुदवाया तथा गाव के चारो तरफ दीवार बनवा कर पक्की मोर्चा बन्दी की जिससे कि कोई भी सनिक इस मोर्चे को पार कर अन्दर प्रविष्ट न हो सके।

इस प्रबन्ध के पश्चात् युद्ध म मारे जाने वाले सनिको और घोडो के पूर्ण विवरण को लेखनी बद्ध करने का निश्चय हुआ। पर अहमद खा ने कहा कि हम म से कोई भी आदमी नही मारा गया और न ही हमारा घोडा काम आया है। इन नामो को लिखने से कोई लाभ भी नही है। इस समय समस्या अनाज की है अत उस पर विचार किया जाय।

इस पहाडी क्षेत्र म खेती कम होती थी और अनाज समाप्त हो चुका था। बनजारे[1] इस तरफ नहीं आते थे। इस कारण से उन दिनो म शाही सनिको के ऊपर अजीब विपत्तियाँ आ गई थी।

अमीरो ने आपस म सलाह करके यह निश्चय किया कि एक दो सनिक टुकडियो को पहाडी घाटियो म और टेकरियो पर भेज कर अनाज मगवाया जाय। इस प्रकार के सनिक दल वहा के निवासियो को लूटने लगे किन्तु उनका गुजारा जानवरो का मास खाने म चलता था। इस क्षेत्र म आम बहुत थे जिनकी कुछ गिनती नही हो सकती थी। वहाँ पर गवार और निम्न श्रेणी के लोग अनाज के बदले म आम ही खाया करते थे और प्राय वादी[2] के मारे बीमार होते थे। यहा का आम तोला गया। उसका वजन अकबरी सेर भर का हुआ। उसका छिलका पतला था लेकिन वह आम मीठा और बहुत स्वादिष्ट नही था।

---

१ राजपूताना म माल ढोने का काय बनजारे करते थे जो अपने पशुओ की पीठ पर लाद कर माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। (स०)।

२ वायु रोग।

"इस अवधि मे बादशाही संदेशवाहक महमूद खवास बादशाह के आदेश से वहा पर आया और युद्ध का पूरा विवरण प्राप्त करके दूसरे दिन वापस बादशाह के पास चला गया, और वहाँ प्रत्यक्ष का जैसा कुछ काम सुना था उसने निवेदन किया। बादशाह को राणा का पीछा नहीं किया जाना और उसको जीवित छोड दिया जाना पसन्द नही आया। बाकी के सारे हालात से उसको सताप हुआ।

कुवर मानसिंह ने रामप्रसाद हाथी को जिसको बादशाह ने पहले कई बार राणा से मागा था और राणा ने उसे नही दिया था, ३०० सवारो के साथ मुल्ला[2] के साथ बादशाह की सेवा मे भेजा। गौगुदे से २० कोस, गाव मोही तक मानसिंह स्वय शिकार के बहाने से उसे पहुँचाने गया। मार्ग मे लोग हर जगह लडाइ और मानसिंह की विजय का हाल सुनते थे मगर इस पर विश्वास नही करते थे। जब मुल्ला आम्बेर पहुँचा तो वहा लोगो को बडी खुशी हुई। फतहपुर मे राजा भगवतदास मुल्ला को शाही दरबार मे ले गया। बादशाह ने पूरा विवरण को सुन कर मुल्ला को ९६ मुहरें इनाम मे दी और रामप्रसाद का नाम 'पीर प्रसाद' रक्खा।'[2]

मेवाड की तवारीख मे इस युद्ध के बारे मे मानसिंह की लडाई मे इतना और ज्यादा विवरण भी लिखा मिलता है कि जब लडाई खूब जोर शोर से हो रही थी तो महाराणा अपने घोडे चेतक को दौडा कर बादशाही सेना मे घुस गया और मानसिंह के हाथी पर बरछी का वार किया मगर हाथी का हौदा फौलादी तख्ता का बना होने के कारण मानसिंह तो बच गया किन्तु उसका महावत मारा गया। उस अवसर पर वहा भयकर युद्ध हुआ और दुश्मनो ने महाराणा को घेर लिया। महाराणा तीन बार इस घेरे मे से बच कर निकल गया, किन्तु चौथी बार वह घेरे मे से निकल नहीं सका। उस समय झाला मान उसका छत्र और सुनहरी झडा लेकर एक तरफ भाग खडा हुआ। मुगलो ने उसे ही राणा समझा और उसके पीछे दौडे और इस प्रकार उस अवसर पर महाराणा जान बचा कर निकल गया।

---

१ अल बदायुनी। (स०)।

२ बदायुनी० (अ० अ०) २ पृ० २३६ २४०। (क)।

इसके बाद झाला मन्नार ने मुगलों से भयंकर युद्ध किया और अपने साथियों सहित काम आया। उसकी इस सेवा के बदले में महाराणा ने उसके वंशजों को दरबार में अपने दाहिने हाथ की तरफ बैठने का कुरब[1] दिया और आदेश दिया कि जब भी उसके वंशज दरबार में आवें तो राजकीय महलों तक अपना नक्कारा बजाते आवें। साथ ही झंडा और छत्र भी अपने पास रखा करें।

महाराणा के युद्ध से निकल जाने के बाद उसकी सेना भी तितर-बितर हो गई। वह अकेला ही पहाड़ों में चला गया। उसे युद्ध क्षेत्र से निकलते देख कर दो मुगल सैनिक उसके पीछे चल पड़े। मार्ग में एक पहाड़ी नाला आया। महाराणा का घोड़ा चेटक उसको पार कर गया।

महाराणा के भाई शक्तिसिंह ने जिसको अकबर बादशाह ने भसरोड का इलाका दिया था और जो इस मुहिम में मानसिंह के साथ आया था जब देखा कि मेरा भाई अकेला जा रहा है और दो मुगल उसको मारने के लिये पीछे चले जा रहे हैं तो उसके दिल में भाई के प्यार ने जोश मारा और वह घोड़ा दौड़ा कर मुगलों के साथ हो गया। फिर उपयुक्त स्थान देख कर बरछे से उन दोनों सैनिकों को मार कर वह अपने भाई से जा मिला। उस समय दोनों भाई बड़े प्यार से मिले और चेटक जो बुरी तरह से घायल हो गया था अशक्त होकर गिर पड़ा। शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा महाराणा को सौंप दिया। महाराणा ने चेटक के ऊपर से ज्योंही सामान आदि उतार कर शक्तिसिंह के घोड़े पर रखा त्योंही चेटक मर गया। शक्तिसिंह महाराणा से कुछ समय तक बात चीत करता रहा। फिर वह वापस लौट पड़ा और महाराणा गोगुंदा चला गया।

राज प्रशस्ति[3] में लिखा है कि महाराणा ने इस सेवा के बदले में शक्तिसिंह और उसके वंशजों को "राणा वल्लभ" की पदवी प्रदान की।

---

१ सम्मान।

२ उक्त घटना लोक कथा पर आधारित है एवं अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों से पुष्टि नहीं होती है। अतः मान्य नहीं हो सकती। (स०)।

३ राज प्रशस्ति महाकाव्यम् सर्ग ४ श्लोक ३०। (स०)।

टॉड 'राजस्थान' में लिखा है कि यह युद्ध श्रावण वदी ७, सं० १६३३[1] को हुआ। उसमें महाराणा के ५०० सैनिक और तंवर राजा रामशाह सहित ३५० सैनिक जिनको महाराणा ने ८०० रुपये रोज मेहमानदारी देकर रखा था अपना नाम और कुल को उज्ज्वल बना कर इस युद्ध में काम आये।[2]

'अकबर नामा' से महाराणा की हार का विशेष कारण यह मालुम होता है कि जब युद्ध ने उग्र रूप ग्रहण कर लिया और महाराणा व कुंवर मानसिंह एक दूसरे से लड़ रहे थे उस समय ऐसा दिखाई दिया कि शायद दुश्मनों (महाराणा) का विजय होगी। उस समय मेहतर खां शीघ्रता के साथ में सेना के पृष्ट भाग में अपनी सेना को दौड़ाता हुआ लाया और ऐसी अफवाह फैलाई कि बादशाह स्वयं नई घुड़सवार सेना के साथ आ गया है। इससे दुश्मन भाग खड़ा हुआ और युद्ध में विजय हुई।[3]

इस विजय की सूचना युद्ध के छठवें दिन आषाढ़ वदी १२[4] को फतहपुर के शिविर में बादशाह के पास पहुँची।

मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि मानसिंह का पड़ाव बनास नदी के ऊपर था। उससे ३ कोस दूर राणा का शिविर था और यह जगह उदयपुर से ९ कोस की दूरी पर थी। महाराणा ने पुरबिया मुकुंददास और सीसोदिया नेता भाकरोत को मानसिंह की सूचना लाने के लिये भेजा। उस समय मानसिंह राणा के शिविर से २ कोस की दूरी पर शिकार खेल रहा था। उसके साथ केवल १०० सवार थे। इन गुप्तचरों ने रात्रि के समय लौट कर राणा को यह सूचना दी तथा कहा कि यही उचित अवसर है मानसिंह पर आक्रमण करना चाहिये। इस अवसर से लाभ उठाने के लिये महाराणा भी तैयार हो गया किंतु उसके सरदार बीदा झाला ने महाराणा

१ बुधवार जुलाई १८ १५७६ ई०। टाड राजस्थान (जा० सं०, १ पृ० ३९६) में श्रावण सुदी ७ दी है। मुंशी देवीप्रसाद ने भ्रांतिवश यहां श्रावण वदी ७ लिख दी है। (सं०)।

२ टाड राजस्थान (जा० सं०) १, पृ० ३९६। (सं०)।

३ अ० ना० (अं० अ०) ३ पृ० २४६। (सं०)।

४ शनिवार जून २३ १५७६ ई०।

को रवाना नहा होने दिया। दूसर दिन खमनार नामक स्थान पर लडाइ हुइ। राणा क पास ९–१० हजार सवार थ। मगर मानसिंह की विजय हुई और राणा हारा।[1]

हार-जीत तो ईश्वराधीन है लेकिन इसमे कोई सन्देह नहा कि राणा न वीरता के साथ युद्ध किया। अगर बादशाह क आन की झूठा अफवाह नहा उडाई जाती तो महाराणा क जीत जाने म कोई सन्देह नही था।

राजस्थानी और फारसी ग्रथो म इस युद्ध का तिथि एक मिलती है किन्तु महीना म विभिन्नता दिखाई देता है। राजस्थानी लेखक विक्रम साल क श्रावण कृष्णा ७ का युद्ध होना लिखते हैं[2] लेकिन अकबर नामा म तीर माह की ७ तारीख लिखी है जिसकी गिनती करने पर आसाढ कृष्णा ७ ही आती है।[3] मुल्ला अब्दुल कादिर के ग्रीष्म ऋतु वर्णन क आधार पर यही तिथि सही प्रतीत होती है।

मुहणोत नणसी ने युद्ध का १६३२ विक्रमी म होना लिखा है।[4] लेकिन प्रान्तिक वर्ष गणना क कारण यह विभिन्नता प्रकट होती है। मारवाड म श्रावण माह और मेवाड म भाद्रपद माह[5] की कृष्णा १ स वर्ष की गणना आरम्भ होता है जबकि विक्रम सवत् म यह गणना चैत्र शुक्ला १ स ही आरम्भ होती है। अत नणसी का १६३२ भी १६३३ विक्रमी ही माना जायगा।

इस युद्ध के बाद महाराणा कुभलमेर के दुर्ग म रहने लगा। यह स्थान उदयपुर से पश्चिम दिशा म गोडवाड परगना के पहाडी प्रदेश क ऊपर है। महाराणा ने मेवाड का सम्पूर्ण मैदानी प्रदेश उजाड दिया और वहाँ क निवासियों को पहाडों म बुलवा लिया। फिर अजमेर मालवा और

---

१ नणसी० (प्रतिष्ठान) १ पृ० ६० । (स०)।

२ बुधवार जुलाई १८ १५७६ ई०। यह तिथि राणा प्रताप रा बात (महाराणा प्रताप स्मृति ग्रथ राजस्थानी गद्य पुरातात्त्विक सामग्री पृ० १० ११) और बाकीदास री ख्यात (पृ ८२ क्र १ २६) म मिलती है। (स०)।

३ सोमवार जून १८ १५७६ ई०। अ० ना० (अ० अ०) ३ पृ० ७४५। (स०)।

४ नणसी० (प्रतिष्ठान) १ पृ० २०८। (स०)।

५ यहा मुशी देवीप्रसाद से भूल हो गई है मेवाड म सवत श्रावण कृष्णा १ स प्रारम्भ होता है। वीर विनोद० २ पृ० २६। (स०)।

गुजरात के रास्ता पर लूटमार शुरू करवा दी। फलत रसद और दूसरी व्यापारिक वस्तुओं का आना जाना बंद हो गया जिससे शाही सेना को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में आसफ खा और मानसिंह से कुछ भी व्यवस्था नहीं हो सकी और इस अव्यवस्था की शिकायत बादशाह के कानों तक पहुंची। किन्तु उस समय बादशाह का ध्यान बंगाल की तरफ लगा हुआ था, जहां शाही सेना पठानों से संघर्षरत थी। साथ ही वह स्वयं भी सेना की मदद के लिये श्रावण कृष्णा २ [1] को बंगाल की तरफ रवाना हुआ। सौभाग्य से उसी दिन और उसी मिति को गोगुन्दा विजय के पच्चीसवें दिन बंगाल पर भी शाही सेना ने विजय प्राप्त की। बादशाह यह खबर सुन कर रास्ते से ही राजधानी लौट आया। वहां से दिखावटी रूप में तो देव दर्शन और वास्तव में मेवाड़ स्थित शाही सेना की मदद पहुँचाने के लिये रवाना होकर आसोज सुदी ५ [2] को अजमेर पहुँचा। वहां पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि गोगुन्दा में स्थित शाही सेना में माग की कठिनाइयों के कारण अनाज कम पहुँच पाता है और कुंवर मानसिंह ने राणा के प्रदेश में लूटमार करने की मनाही कर दी है इस कारण से गोगुन्दा में सेना को अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ रही है। इसके अतिरिक्त कुंवर मानसिंह व आसफ खा में भी विरोध व्याप्त है। ऐसी परिस्थिति को देख कर बादशाह ने वहां के अमीरों को अति शीघ्र अकेले ही अपने पास चले आने का आदेश भेजा। जब वे बादशाह के सामने उपस्थित हुए तो बादशाह ने मानसिंह और आसफ खा का कई दिन शाही दरबार में प्रवेश की मनाही कर दी। बाद में अपराध क्षमा करने पर ही उन्हें अपने समक्ष बुलाया।

इस समय महाराणा ने सिरोही के राव सुरताण देवड़ा जालोर के खान ताज खा और ईडर के राजा नारायणदास को भी अपने शामिल मिला लिया और अरावली के पहाड़ों के दोनों तरफ गुजरात के मार्गों पर लूटमार और भगदड़ करने लगा। बादशाह ने जालोर और सिरोही के ऊपर तरसू खा और राव रायसिंह को भेजा। तब तो शाही सेना से घबरा कर दोनों ही शासक शाही दरबार में उपस्थित हो गये। अत तदनन्तर बादशाह ने तरसू खा को पाटण का अधिकारी बना कर भेजा। रायसिंह को नाडोल रहने का आदेश

---

१ शुक्रवार, जुलाई १३ १५७६ ई०।
२ गुरुवार सितम्बर २७, १५७६ ई०।

लिया। इससे महाराणा के लिए गुजरात आने जाने का रास्ता बन्द हो गया।

अब बादशाह ने कार्तिक कृष्ण ६[1] को अजमेर से गोगुंदा की तरफ कूच किया। उसने अपनी सेना को पहिले ही इस अभियान पर रवाना कर दिया था। गोगुन्दा पहुँचने के बाद उसने कुतुबुद्दीन, राजा भगवन्तदास और कुँवर मानसिंह को मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश में महाराणा का पीछा करने के लिए नियुक्त किया। [illegible] ईडर की तरफ रवाना किया तथा इस सेना के साथ [illegible] गुजरात की तरफ रवाना कर दिया। [illegible] राज्य की सीमा पर पहुँचा। महाराणा और [illegible] ने उसका सामना किया। [illegible] और कार्तिक कृष्णा १[2] [illegible] पर बादशाह का अधिकार हो गया।

इसके पश्चात् बादशाह ने राजा [illegible] आदि सेनानायकों को गोगुन्दा से २० कोस दूर [illegible] ग्राम में नियुक्त किया। [illegible] को [illegible] क्षेत्र में नियुक्त किया। [illegible] मगसर सुदी ७[3] को बादशाह [illegible] मालवा की तरफ रवाना हुआ। [illegible] राणा का [illegible] कुतुबुद्दीन और राजा भगवन्तदास [illegible] वापस चले गए। [illegible] बादशाह उन पर अप्रसन्न हो गया और कुछ समय तक उनका दरबार में आना भी बन्द कर दिया।

इसके पश्चात् बादशाह ने [illegible] में नियुक्त किया और राजा [illegible] कुतुबुद्दीन के [illegible] बांसवाड़ा [illegible] के शासक प्रतापसिंह और डूंगरपुर के शासक आसकरण ने उसकी [illegible]

---

१ [illegible]
[illegible]
[illegible]

स्वीकार की। यहाँ से बादशाह सिरपुर गये जहाँ कुछ दिन आराम किया।

बादशाह का गोगुन्दा आगमन और इसके पश्चात् पहाड़ी मार्ग से मालवा की तरफ जाने का केवल एक मात्र यही उद्देश्य था कि किसी भी प्रकार महाराणा भी अन्य हिन्दू शासकों की तरह उससे प्रभावित होकर आधीनता स्वीकार कर लें। किन्तु महाराणा बादशाह के सामने न झुकने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ था। महाराणा की बात तो दूर रहा उस समय एक भाट जिसको महाराणा ने प्रसन्न होकर अपनी पगड़ी प्रदान की थी, जब अकबर बादशाह के दरबार में गया और उसको झुक कर सलाम करने के समय महाराणा द्वारा प्रदान की गई पगड़ी को उतार कर नंगे सिर बादशाह से मुजरा किया। बादशाह द्वारा इस प्रकार नंगे सिर मुजरा करने का कारण पूछे जाने पर उसने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया कि यह पगड़ी महाराणा प्रतापसिंह की है जिसने आज तक किसी हिन्दू या मुसलमान शासक के सामने सिर नहीं झुकाया। इस कारण मैंने भी उसका सम्मान रखा है।[1]

बादशाह अकबर कम से कम छः माह तक महाराणा को परेशान करने के लिये इस प्रदेश में रहा। लेकिन महाराणा ने इस कठिन समय में भी धैर्य नहीं छोड़ा, तथा बादशाह की परवाह नहीं की। इसके विपरीत वह बादशाह को निरंतर परेशान करता रहा। जब महाराणा ने देखा कि बादशाह उसके प्रदेश को छोड़ कर दूर निकल गया है तो वह पहाड़ी क्षेत्र से नीचे उतर कर बादशाही थानों पर आक्रमण करने लगा। उसने आगरा व मेवाड़ का मार्ग अवरुद्ध कर शाही सेना का मार्ग बंद कर दिया। जैसा कि मुल्ला अब्दुल कादिर (बदायूनी) लिखता है कि वह बीमार होने के कारण आगरा में ही रह गया था। स्वस्थ होने के पश्चात् बांसवाड़ा के मार्ग से अकबर के पास सेना में जाना चाहता था, किन्तु अब्दुल्ला खां ने इस मार्ग को अरक्षित और भयानक बता कर बीच मार्ग में हिण्डौन से ही उसे वापस लौटा दिया, और फिर वह ग्वालियर सारंगपुर और उज्जैन होता हुआ देपालपुर में बादशाह के पास पहुंचा।[2]

---

१ यह ऐतिहासिक घटना नहीं है। इससे केवल महाराणा की स्वाभिमानी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला जाना ही उद्देश्य है। (म०)।

२ बदायूनी (अं० अ०) २ पृ० २५०। (म०)।

इस समयावधि में ही सिरोही का सामन्त सुल्तान देवड़ा भी शाही सेना से भाग कर सिरोही जा पहुँचा था और ईडर के राव नारायणदास ने भी विद्रोही कार्यवाही आरम्भ कर दी थी। यह सब सुनने के बाद पौष शुक्ला ६, १६३३ वि० को[1] बादशाह अकबर ने राजा भगवन्तदास कुंवर मानसिंह, मिर्जा खां और कासिम खां आदि सेनानायकों को गोगुन्दा की तरफ रवाना किया। सिरोही के सामन्त सुल्तान देवड़ा को दबाने के लिये राय रायसिंह को तथा नारायणदास को दबाने के लिये आसफ खां को भेजा। राव रायसिंह ने सिरोही पर आक्रमण कर सिरोही और आबू गढ़ सुल्तान से छीन लिये। उधर महाराणा ने अपनी ओर से सहायता देकर नारायणदास को आसफ खां के विरुद्ध भेजा। ईडर से दस कोस पर पहुँच कर उसने बादशाही थाने पर छापा मारने का प्रयास किया किन्तु आसफ खां ने सतर्कता के साथ फाल्गुन शुक्ला ४[2] को ईडर से ७ कोस आगे बढ़ कर नारायणदास का सामना किया और उसे हरा कर भगा दिया। किन्तु राजा भगवन्तदास और मिर्जा खां वगैरह को महाराणा को खोजने में सफलता नहीं मिली। वे सब उसी तरह थानों पर दौड़ते रहे। शाही अमीरों ने महाराणा को पकड़ने का बहुत प्रयत्न किया लेकिन महाराणा उनके हाथ नहीं आया। जब शाही अफसर महाराणा का एक पहाड़ पर ठहरना सुन कर उस पहाड़ को घेर लेते तब महाराणा दूसरे पहाड़ से निकल कर उन पर छापा मार जाता था। वह कभी भी एक स्थान पर या एक किले में अधिक समय तक नहीं ठहरता था। क्योंकि इससे किसी वक्त कठिनाई में पड़ सकता था। वह नित्य प्रति शाही सेना की तलाश में फिरता रहा। इसके फलस्वरूप उदयपुर और गोगुन्दा से बादशाही थाने उठ गये और शाही का थानेदार मुजाहिद बेग मारा गया।

बादशाह का दूसरी बार अजमेर जाना—

सदैव की तरह अकबर बादशाह कार्तिक कृष्णा १२, १६३४ वि०[3] को पुनः अजमेर पहुँचा। वहां कुछ दिन ठहर कर मेवाड़ का सारा वस्तु

१ बुधवार दिसम्बर २६, १५७६।
२ शुक्रवार फरवरी २२, १५७७ ई०।
३ सितम्बर १८, १५७७ ई०।

स्थिति समझने का प्रयत्न किया। पहिले की सेना से मेवाड़ में कुछ काम निकलता हुआ न देख कर मेड़ता से उसने फिर एक नवीन सेना कार्तिक शुक्ला १५ १६३४ वि०[1] को शहबाज खां के नेतृत्व में महाराणा को दबाने के लिये भेजी। राजा भगवन्तदास कुंवर मानसिंह, पायन्दा खां सैय्यद कासम, सय्यद हासिम सय्यद राजू अमद तुर्कमान और गजरा चौहान आदि अन्य सेनानायकों को भी शहबाज खां के साथ रवाना किया। आसिफ खां के स्थान पर बख्शी भी शहबाज खां को बनाया। शहबाज खां चुस्त और चालाक अधिकारी था। इससे पहिले भी उसने हज जाने वालों को, जिनके साथ बादशाह ने मक्का शरीफ के लिये बहुत से रुपये भेजे थे महाराणा की सरहद में से होकर सुरक्षित रूप से पार करवा दिया था। उसने मेवाड़ स्थित बादशाही थानों का निरीक्षण करने के बाद शाही इलाके की सरहद की सुरक्षा के लिये बादशाह से अतिरिक्त सहायता की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना पर बादशाह ने शेख इब्राहीम फतेहपुरी को कुछ सेना के साथ उसके पास भेजा। उसके पहुंचने के पश्चात् शहबाज खां ने कुंभलमेर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार करने का निश्चय किया। साथ ही महाराणा की तरफदारी करने की आशंका से उसने राजा भगवन्तदास और कुंवर मानसिंह दोनों को वापस शाही दरबार में भेज दिया और स्वयं शरीफ खां गाजी खां और मिर्जा खां आदि के साथ जाकर कुंभलमेर के दुर्ग को घेर लिया। वैशाख कृष्णा १२, संवत् १६३५ वि०[2] को महाराणा ने मुगलों से दुर्ग के भीतर से युद्ध किया,

---

१ अक्तूबर २६ १५७७ ई०। परन्तु शहबाज खां को तो अक्तूबर १५, १५७७ ई० को मेवाड़ के विरुद्ध भेजा था। अ० ना० (अं० अ०), ३ पृ० ३०५। (स०)।

२ गुरुवार अप्रेल ३ १५७८ ई०। 'मेवाड़ की तवारीख' में इस घटना का आषाढ़ कृष्णा ३० १६३५ वि०सं० (गुरुवार, जून ५ १५७८ ई०) को होना लिखा है। किन्तु समकालीन फारसी ग्रन्थ 'अकबर नामा' में इसका उल्लेख २४ फरवरदीन के दिन किया है। जिसकी गणना करने पर वैशाख वदी १२,१६३५ वि० ही आता है अतः यही तिथि सत्य प्रतीत होती है। संभव है कि युद्ध वैशाख कृष्णा १२ को आरम्भ हुआ और दुर्ग पर अन्तिम रूप से आषाढ़ कृष्णा ३० को शहबाज खां का अधिकार हुआ हो। (दवी०)। परन्तु देवी प्रसाद द्वारा व्यक्त यह सम्भावना सही नहीं है। अप्रेल ३ १५७८ ई० को ही किले पर अधिकार हो गया था। अ० ना० (अं० अ०) ३ पृ० ३४०। (स०)।

किन्तु दुर्ग में एक बड़ी तोप के फट जाने से दुर्ग में रखा हुआ युद्ध का सारा सामान जल गया। फलतः महाराणा को विवश होकर किला छोड़ना पड़ा। महाराणा वहाँ से निकल कर बांसवाड़ा की तरफ चला गया। किन्तु उसके कुछ प्रसिद्ध योद्धा पहले तो दुर्ग के दरवाजे पर लड़े और फिर दुर्ग स्थित मंदिरों और अपने घरों के आगे वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आये। शहबाज खां गाजी खां को दुर्ग में छोड़ कर स्वयं महाराणा का पीछा करने के लिये रवाना हुआ। दूसरे दिन दोपहर को गोगुन्दा तथा तदनन्तर अर्ध रात्रि में उदयपुर पर अधिकार कर लिया और वहां उसने बहुत सा माल लूटा।

मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा हुआ है कि अकबर की सेना ने संवत् १६३३ वि० में कुंभलमेर पर अधिकार कर लिया और वहां पर भाण अखैराजोत आदि राणा के कई अन्य राजपूत भी मारे गये।[1] इस प्रकार यहां दो वर्ष की गलती है जो पता नहीं क्यों कर रह गई है।

इसके पश्चात् शहबाज खां महाराणा की खोज में उस पहाड़ी प्रदेश में यत्र तत्र फिरता रहा लेकिन महाराणा उसके हाथ नहीं आया। अन्त में निराश होकर उसने महाराणा का पीछा करना छोड़ दिया। तथा पता लगा कर उसके डेरों को लूट लिया। इसी समय राव सुरतन हाडा का पुत्र दूदा जो कुछ समय पहले शाही सेना से विद्रोह कर महाराणा की सेवा में चला गया था और बादशाह का विरोध कर रहा था वही दूदा इस समय शहबाज खां के पास उपस्थित हुआ। अतः शहबाज खां उसको साथ लेकर पंजाब में बादशाह के पास गया। आषाढ़ शुक्ला १० १६३५ वि० के दिन शाही दरबार में पहुंच कर दूदा ने बादशाह से मुजरा किया।[2] शहबाज खां की प्रार्थना पर बादशाह ने भी दूदा को क्षमा कर दिया।

शहबाज खां के पंजाब की तरफ चले जाने के बाद महाराणा बांसवाड़ा की तरफ से पुनः छप्पन के पहाड़ों में आया और बादशाही थानों को लूटमार करने लगा। इसकी सूचना मिलने पर बादशाह ने फिर पौष कृष्णा १ १६३५ वि०[3] के दिन शहबाज खां और गाजी खां को राणा का दमन करने के लिये

---

१ नैणसी० (प्रतिष्ठान) १ पृ० २०९ १० । (स०)।
२ सोमवार जून १९ १५७८ ई०।
३ सोमवार दिसम्बर १५ १५७८ ई०।

भेजा। इसके साथ मुहम्मद हुसैन शेख तमूर बदख्शी और मीरजादा अली खा आदि अनेक मुगल सेनानायको को भी नियुक्त किया। इस सेना के आगमन की सूचना मिलने पर महाराणा पुन पहाडा प्रदेश म जा छिपा। शहबाज खा ने तीन महीनो तक उस प्रदेश म निरथक घूमता रहा उसने प्रत्येक थाना चौकी का निरीक्षण कर वहाँ युद्ध-पटु सुयोग्य सैनिको को नियुक्त किया और स्वय शाही दरबार म लौट गया। उसके लौट जाने के बाद महाराणा ने ज्येष्ठ शुक्ला १४ १६३६ वि०[1] से पुन लूटमार आरम्भ कर दी। इस पर बादशाह अकबर जब कार्तिक कृष्णा ११ १६३६ वि०[2] को अजमेर आया और शुक्ला ११ को[3] वापस जाने लगा तब साभर के पडाव से अजमेर सूबे के प्रबन्ध के लिये फिर से शहबाज खा को वहाँ छोड दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराणा ने मेवाड के अतिरिक्त सूबा अजमेर के अन्य क्षेत्रो म भी हस्तक्षेप किया और लूटमार की थी।

शहबाज खा ने फिर महाराणा का पीछा करना आरम्भ किया। इस बार महाराणा को बडा कठिनाइयो का सामना करना पडा। उसको भोजन करने तक का समय नही मिलता था। वह जिधर भी जाता मुगल सेना निरन्तर पीछा करती रहती था। एक दिन तो उसको अपनी जान बचाने के लिये पाच बार भोजन छोड कर भागना पडा था। ऐसी विपत्ति, कि जिसमे हर पल शत्रु हाथ म तलवार लिये सर पर खडा हो अन्य किसी के सामने उपस्थित नही हुई होगी। ऐसी कठिनाइयो से गुजरने वाला एक मात्र व्यक्ति महाराणा प्रतापसिंह ही था। इतनी कठिनाइयो का सामना करने पर भी उसने अपने स्वाभिमान को नही छोडा। विद्वानो का कथन है कि सच्चा शूरवीर उसी को मानना चाहिये, जो हार और जीत दोनो ही परिस्थितियो म समान ढग म रहे। यह बात महाराणा प्रतापसिंह म अच्छी तरह से देखी जा सकती है। उसको प्रतिदिन हार का सामना करना पड रहा था। सम्पूर्ण भूमि उसके अधिकार से निकल चुकी थी। फिर भी वह सदैव लडने को तयार रहता था। तथापि वह कभी दीन वचन अपने मुख से नही निकालता था।

---

१ सोमवार जून ८, १६७९ ई०।
२ शुक्रवार अक्तूबर १६ १६७९ ई०।
३ शुक्रवार अक्तूबर ३० १६८१ ई०।

टाड ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि एक दिन महाराणा की छोटी पुत्री अपने हिस्से की आधी रोटी तो खा गई और आधी रोटी को दूसरी बार के लिये सुरक्षित रख दी। इतने में ही एक बिल्ली आयी और उस रोटी को खा गई। इसके लिये वह लडकी चिल्ला कर रोने लगी। उसका यह दुःख महाराणा से देखा नहीं गया। उसने इन कठिनाइयों से छुटकारा पाने के लिये अकबर को पत्र लिखा। अकबर इस पत्र को प्राप्त कर गर्व करने लगा और आम दरबार में वह पत्र सबको दिखाया गया। बीकानेर के राव रायसिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज ने कहा कि ऐसा दीनतापूर्ण लेख महाराणा कभी नहीं लिख सकता है। यह तो किसी ने षडयन्त्र रच कर उस पर कलंक लगाने का प्रयास किया है। मैं राणा को जानता हूं। वह कभी भी इस प्रकार का एक शब्द भी नहीं लिखेगा। इसके बाद ऐसी कोई कार्यवाही से उसे रोकने के लिये पृथ्वीराज ने महाराणा को कई ओजस्वी दोहे लिख कर भेजे जिनको सुनने के बाद महाराणा का स्वाभिमान पुनः जाग उठा उसकी निराशा समाप्त हो गई और उसमें १०,००० घोडों का बल आ गया।[1] यह घटना केवल कहानी मात्र जान पडती है। इस घटना का अकबर बादशाह का भी किसी तवारीख में उल्लेख नहीं है। अगर महाराणा ने ऐसा पत्र लिखा होता तो अबुल फजल जो छोटी २ बातों को बढ़ा चढ़ा कर लिखने में चतुर था इस घटना का उल्लेख अकबर नामा में अवश्य ही करता। परन्तु अकबर नामा में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह घटना केवल कल्पना मात्र ही है।

यह सत्य है कि जब शहबाज खां द्वारा निरन्तर पीछा किये जाने से महाराणा मेवाड़ क्षेत्र में ठहर नहीं सका, जब उसको आस-पास कहीं ठहरने का सुरक्षित स्थान नहीं मिला तो भाग कर वह सूंधा के पहाड़ों में जो आबू से १२ कोस उत्तर पश्चिम में स्थित है और विपत्ति के दिनों में राणा मोकलसी भी वहां रह चुका था, चला गया। वहां पर देवल राजपूतों[2] का अधिकार था। उन्होंने महाराणा का बहुत आदर सम्मानपूर्वक स्वागत किया। तथा लोयणा के ठाकुर रायधवल ने जो देवल राजपूतों का मुखिया था महाराणा की भेंट करने के लिये अपनी पास वाली उपयुक्त वस्तु नजर की

१ टॉड राजस्थान० (ओ० स०) १ पृ० ३९८ ९९। (स०)।
२ यह परिहारों की उप शाखा थी। (स०)।

कर अपनी पुत्री का विवाह महाराणा से कर दिया। तत्पश्चात् उसने महाराणा को पहाड के ऊपर बडे आदर सम्मान और सुरक्षा से रखा। महाराणा ने उस जगह पर एक बाग लगवाया तथा एक वापी (बावडी) भी बनवाई जो अब तक वहा मौजूद है।

महाराणा के सूधा पहाड पर चले जाने के कारण शहबाज खा को महाराणा की कोई भी सूचना नहा मिली। इस समय बगाल और बिहार के शासक विद्रोह करने लग गये थ। अत उन्हे दबाने के लिये उस समय शहबाज खा को पूर्व की तरफ कूच करने का बादशाही आदेश प्राप्त हुआ। अत मेवाड से रवाना होकर शहबाज खा आषाढ शुक्ला ६,१६३७ वि०[1] (१६३६ वि० मवानी गणना से) को फतहपुर म बादशाह के पास पहुँचा। इसका पता लगने पर महाराणा ने पुन मेवाड जाने के लिये रायधवल की सहमति प्राप्त की। रवाना होने समय रायधवल को इनाम म देने के लिये महाराणा के पास कुछ भी नही था फिर भी उसने रायधवल को राणा की पदवी देकर उसको अपने बराबर का मान दे दिया।

बादशाह ने शहबाज खा के स्थान पर दस्तम खा को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया।[2] किन्तु वह कछवाहा विद्रोहियो का सामना करता हुआ ८ महीने म ही मारा गया।[3] तत्पश्चात् उसके स्थान पर बादशाह ने बैराम खा के पुत्र मिर्जा खा को जो आगे चल कर खानखाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ नियुक्त किया। महाराणा की प्रशसा मे मिर्जा खाँ द्वारा रचित दोहे प्रसिद्ध हैं। इसने महाराणा से कोई छेड छाड नहीं की। फलत मेवाड म पुन महाराणा का प्रभाव स्थापित होने लगा और धीरे धीरे महाराणा आगे बढने लगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि मिर्जा खा को महाराणा से सहानुभूति थी।

मुहणोत नैणसी ने लिखा है कि वैसाख शुक्ल पक्ष १६३८[4] (१६३९

---

१ शनिवार जून १८ १५८० ई०।

२ रुस्तम खा १० १५७३ ई० म ही अजमेर का सूबेदार था। मेवाड अभियान ही केवल शहबाज खा को सौंपा गया था तथा शहबाज खा के चले जाने के बाद यह कार्य भी दस्तम खा पर आ पडा था। (स०)।

३ अक्तूबर २४ १५८० ई०। महाराणा०, पृ० ४१। (स०)।

४ अप्रैल २० से मई ७, १५८२ ई० तक।

वष अर्थात् १६५३ वि०[1] तक महाराणा का कोई विवरण नहा मिलता। इस वष भी महाराणा की मृत्यु की सूचना ही लिखी हुई है।[2] इस लम्ब समय तक मेवाड के प्रति बादशाह की उदासीनता और महाराणा के विरुद्ध सेना नही भेजने का यही कारण था कि बादशाह १६४१ वि० (१५८४ ई०) से पजाब म रहा और उसका ध्यान अधिकतर उत्तर पश्चिमी सीमा की तरफ था क्योंकि तूरान के शासक अब्दुला खा उजबग के साथ बिगाड हो गया था और बारबार उसके काबुल और हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के समाचार फैलते रहते थ।

टाड-राजस्थान म लिखा है कि महाराणा के कठिन समय का देख कर उनके पुश्तनी दीवान भामा शाह को दुख हुआ और उसने अपने पूवजा द्वारा सचित धनराशि महाराणा को सौंप दी। महाराणा ने इसी धनराशि से घोडा और राजपूता की सेना सजा कर देवर म स्थित बादशाही सना पर आक्रमण किया और सारी सना का गाजर मूली की तरह काट डाला। जो बच कर भागे उनका आमेट तक पीछा किया। इस जोश म कुभलमेर पर आक्रमण कर वहाँ अब्दुला और लश्कर खा का मार डाला। इसी तरह से उस प्रदेश के बाइस मुगल थाना पर अधिकार कर वहाँ से शाही सना को मार भगाया।[3]

मेवाड की तवारीख लिखने वालो का कथन है कि केवल १ वष म हा अर्थात् १६४२ वि०[4] म ही अजमेर चित्तौड और माडलगढ के अतिरिक्त सम्पूर्ण मेवाड पर महाराणा ने पुन अधिकार कर लिया। राजा मानसिंह और जगन्नाथ गव से फूले फिरते थ कि हमने महाराणा की कसी दुदशा का सो उनसे बदला लेने के लिये महाराणा ने साथ ही आम्बेर पर हमला किया और वहा के धनाढय शहर मालपुरा का लूट कर मिट्टी म मिला दिया।

महाराणा के अन्तिम वष शान्ति से निकले क्योंकि इन अन्तिम १२ वर्षों मे मुगला ने मेवाड पर कोई चढाई नही की। अन्त इस समयावधि म

१ १५९७ ई०।
२ अ० ना० (अ० अ०) ३ पृ० १०६९। (स०)।
३ टाड राजस्थान० (आ स०) १ पृ० ४०३। (स०)।
४ १५८५ ८६ ई०।

महाराणा ने उजडे हुए मेवाड की ओर ध्यान दिया। मुगल आक्रमण के कारण उदयपुर आबाद होते होते रह गया था उसको नये सिरे से बसाया। जिन मेवाडी सामन्तों ने कठिनाई के समय महाराणा का साथ दिया था महाराणा ने उनको बडी बडी जागीरें प्रदान की तथा उनके दरजे और कुब में वृद्धि की।

महाराणा का देहान्त —

सवत् १६५३ वि० म महाराणा का देहात हो गया। तिथि ज्ञात नही हुई। टॉड राजस्थान और मुहणात नैणसी की ख्यात म कोई तिथि नही है। परतु अकबर नामा म लिखा है कि बहमन माह की ७ तारीख सन् ४१ जूलूसा[1] तदनुसार माह सुदी ५[2] सवत् १६५३ वि० को महाराणा कीका[3] की मृत्यु उसके अधर्मी पुत्र अमरा द्वारा जहर खिला देने तथा एक धनुष की प्रत्यचा चढाने के प्रयत्न म लगे झटके के कारण हो गई।

टॉड 'राजस्थान' के अनुसार महाराणा की मृत्यु का विवरण—

महाराणा का सारा जीवन विपत्ति और युद्धो म बीता था। उसका सम्पूर्ण शरीर युद्ध म लगे हुए घावो स भरा हुआ था। हर समय की चिन्ता और दुख के कारण अपनी जवानी म ही वह बूढा हो गया था। रात दिन की दौड धूप के कारण उसके हाथ पैरो म शिथिलता आ गई थी। उसे नाना प्रकार की बीमारियाँ हो गई थीं। उसके अन्तिम समय की कथा भी उसकी बहादुरी का प्रतीक बन गई। उसने अपने उत्तराधिकारी को यह शपथ दिलवाई की हमेशा शत्रुओ से लडते रहना और युद्ध से कभी भी पीछे मत हटना। अमरसिंह ने यह

१ इस इलाही तारीख के दिन सही तिथि माह सुदि ९ (=रविवार, जनवरी १६ १५९७ ई०) थी। इस तारीख के तद्नुरूप जो तिथि यहाँ आगे मुशी दवी प्रसाद ने दी है वह सही नहा है। (स०)।

२ इस लिखने के बाद हमको एक उदयपुरी मित्र के पत्र स मालूम हुआ कि महाराणा का देहात माह सुदी ११ (तदनुसार बुधवार, जनवरी १९ १५९७ ई) को हुआ था। (दवा०)। यही तिथि सही है। (स०)।

३ अकबर बादशाह महाराणा प्रतापसिंह को राणा कीका कहता था। (दवा०)।

शपथ ली और महाराणा का वचन भी लिया। लेकिन महाराणा को संतोष नहीं हुआ क्योंकि वह जानता था कि उसका पुत्र स्वतन्त्रता के पथ पर आने वाली कठिनाइयों और संकट काल का नहीं सह सकेगा। अमरसिंह के प्रति महाराणा की ऐसी धारणा एक समय घटित घटना के कारण बन गई थी। घटना इस प्रकार थी–महाराणा और उसके सामन्तों ने पीछोला झील के किनारे पर कई झोंपड़े बना लिये थे। अपना संकट-काल उन्हीं में बिताते थे। रात्रि के अंधेरे और वर्षा में भी इन्हीं झोंपड़ियों में रहते थे। ऐसी ही झोंपड़ी से निकलते समय राजकुमार अमरसिंह को यह ध्यान नहीं रहा कि उसका दरवाजा अत्यन्त नीचा और उसका बांस बाहर को निकला हुआ था जिससे वह बांस उसकी पगड़ी में फंस गया और वह उसको खेंचते हुए आगे चला गया था। महाराणा ने अपने पुत्र की इस जल्दबाजी को देखा तो उसे दुःख हुआ। उसको यह विश्वास हो गया कि उसका पुत्र शत्रुओं से युद्ध करने की तकलीफों का कभी भी सामना नहीं कर सकेगा।

तब एक टूटे हुए झोंपड़े में महाराणा लेटा हुआ था। विपत्ति के दिनों में उसके सहायक सभी मेवाड़ी सामन्त उसके सिरहाने बैठे बड़ी लाचारी, उदासी और दुःख के साथ उसे देख रहे थे। ऐसी स्थिति बहुत देर तक बनी रही तो ठंडी सांस भर कर सलूम्बर के सरदार ने महाराणा से पूछा कि अब आपको ऐसी क्या परेशानी है (चिन्ता है) जिससे आपके प्राण अटक गये हैं निकल नहीं रहे हैं। तब महाराणा ने स्वयं को सम्भाला और उत्तर दिया कि तुम सब मुझे आश्वासन दो कि मेरे मरणोपरान्त मेवाड़ को प्रदेश तुर्कों को नहीं दे दिया जावेगा। उस झोंपड़े वाली घटना के कारण अपने पुत्र के स्वभाव का विचार करके मैं यह समझ रहा हूं कि मेरे बाद में वह इन झोंपड़ों के स्थान पर बड़े बड़े महल बनवा कर आराम में लीन हो जावेगा। तब मेवाड़ की स्वतन्त्रता जिस के लिये मैंने इतना खून बहाया है उसके हाथ से चली जावेगी। क्या तुम भी उसी के अनुसार हो कार्य करोगे? महाराणा के राग के ये शब्द सुन कर सभी सरदारों ने बाप्पा रावल के सिंहासन की शपथ ली और कहा कि हम सभी राजकुमार की तरफ से यह जमानत देते हैं कि जब तक मेवाड़ को पुनः स्वतन्त्रता नहीं मिल जाती है तब तक हम सभी राजकुमार को महल आदि नहीं बनाने देंगे और न कभी आराम से बैठने देंगे। अपने सरदारों द्वारा कही गई बात सुन कर महाराणा पूरी तरह आश्वस्त हो गया और उसके प्राण तत्काल निकल गये।

टाड का कथन है कि उन प्रदेशों के शासकों को, जिनके प्रदेश इस प्रकार की उथल-पुथल से बचे हुए हों मानना चाहिये कि इस राजपूत शासक प्रताप में कितनी बहादुरी और शूरवीरता का जोश भरा हुआ था, जिसने अपनी थोडी सी ही फौज और सीमित आर्थिक साधनों के होते हुए भी एक ऐसे बडे बादशाह का सामना किया जिसकी सेना की गिनती यूनान पर आक्रमण करने वाली ईरानी सेना से भी कई गुना अधिक थी।

अरावली पहाडों में कोई भी ऐसी घाटी नहीं रही है जिसमें महाराणा ने बहादुरी का काम नहीं किया हो जिनमें या तो उसकी विजय हुई होगी अथवा पराजय भी ऐसी हुई होगी जिससे उसकी प्रतिष्ठा बढी और उसकी प्रसिद्धि भी मिली थी। इन लडाइयों में से हल्दी घाटी और देवर की लडाइयाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।[1]

सारांश

महाराणा प्रतापसिंह बडा बहादुर और शक्तिशाली राजपूत था। राजपूतों में जो गुण होने चाहिये वे सभी गुण उसमें विद्यमान थे। योग्यता और बहादुरी के क्षेत्र में वह अकबर से किसी प्रकार कम नहीं था।

वह इतना धीर वीर और गंभीर था कि निरंतर संकट-काल होने और लगातार युद्ध करते रहने पर भी महाराणा अपनी बात का धनी बना रहा। उसकी सेना के हजारों सैनिक मारे गये, फिर भी वह कभी घबराया नहीं। उसका व्यवहार इतना अच्छा था कि उसके पास धन सम्पत्ति नहीं होने पर भी केवल अपनी मिलनसारी प्रवृति के कारण ही वह अपना कार्य बडी आसानी से निकाल लेता था। वह अपनी प्रजा को इतना प्यारा था कि जब वह चाहता हजारों सैनिकों को जान तक देने के लिये तत्पर कर लेता था। उसके हिसाब बहुत से आदमी मर खप गये फिर भी उसकी प्रजा महाराणा को पूर्ववत् ही चाहती थी।

महाराणा ने मर्यादा का भी पालन किया। अपने प्रदेश के नियम कानूनों और अपने पूर्वजों द्वारा बनाये गये दरबारी रिवाजों को शान्ति के दिनों में

१ टॉड राजस्थान० (आ० सं०) १ पृ० ६० -६०७। (सं०)।

भी बहुत ही कम लोग पालन कर सकते हैं, महाराणा ने अपने विपत्ति के दिनों में भी उनका बहुत अच्छी तरह पालन किया था।

अपने प्रदेश के प्रति प्रेम और उसकी स्वतन्त्रता की चाह महाराणा में कूट-कूट कर भरी हुई थी। कड़ा मेहनत करने का यह हाल था कि भूखा मरता था। राजसिंहासन के स्थान पर पत्थर पर बैठना था छत्र के स्थान पर वृक्षों की छाया में समय व्यतीत करता था और आराम के नाम से *बहुत ठण्डी हवा भी नहीं मिलती थी। फिर भी उसने अपने पूर्वजों से प्राप्त जंगल और पहाड़ शत्रुओं को देना नहीं चाहता था। अन्त में इस* मेहनत का परिणाम यह निकला कि अपने खोये हुए राज्य को बादशाह रूपी शेर की डाढ़ में से उसे निकाल लिया और अपना बाकी रहा जीवन आराम से काटा।

बादशाह अकबर और महाराणा प्रतापसिंह के सम्बन्धी अनेक गीत और कवित्त बनाये गए हैं। उनमें से कुछ दोहे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

१ अकबर समद अथाह सूरायन भरयो सजल।
मेवाडो तिण माह पोयण फूल प्रतापसी ॥ १ ॥
२ अकबर घोर अंधार ऊंघाणा हिन्दू अवर।
जागे जगदातार पोहर राण प्रतापसी ॥ २ ॥
३ अकबर एकण बार दागल की सारी दुनी।
बिन दागल असवार चेतक राण प्रतापसी ॥ ३ ॥[1]
४ चंपो चीतो डाह पारस तणो प्रतापसी।
सौरभ अकबर साह अलियत आभड्यो नहीं ॥ ४ ॥
५ पातल पाघ प्रमाण साची सांगाहर तणी।
रही सदा लग राण अकबर सूं ऊभी अणी ॥ ५ ॥[2]

पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने उदयपुर में महाराणा प्रतापसिंह और कुंवर मानसिंह के मध्य हुए (हल्दी घाटी के) युद्ध सम्बन्धी एक श्लोक भेजा है जो उनको किसी प्रशस्ति में मिला था। इसमें कवि का चमत्कार है जिसे यहाँ दिया जा रहा है—

---

१ उपर्युक्त तीनों पद्य दुरसा आढ़ा रचित हैं। (स०)।
२ यह पृथ्वीराज राठौड़ कृत है। (स०)।

श्लोक

कृत्वा कर खड्गलता सुवल्लभा,
प्रतापसिंहे समुपागते प्रग ।
सा खंडिता मानवती द्विपच्चमू,
सकोचयती चरणौ पराङ मुखी ॥

अर्थ

प्रात काल म अतिशय प्यारी खड्गलता को हाथ म लिये हुए प्रतापसिंह के युद्ध मदान म) आने पर धरती सकुचित होने लगी और मानसिंह की शत्रु सेना युद्ध क्षेत्र स विमुख होकर भाग गई।

इस श्लोक का दूसरा अर्थ मानवती नायिका के सदभ म भी लगाया जा सकता है।[1]

कुछ त्रुटियाँ

महाराणा स सम्बधित इतिहास के लेखकों ने अपने वर्णन म कुछ त्रुटियाँ भी की है। जसे —

१ टाड राजस्थान म यह गलत लिखा है कि 'हल्दी घाटी म बादशाह अकबर का पुत्र शाहजादा सलीम भी मानसिंह के साथ आया था।' इसकी पुष्टि अकबर सम्बधी किसी भी एतिहासिक ग्रन्थ स नहीं होती। साथ ही शाहजादा सलीम का जम स० १ २६ (१५६९ ई०) म हुआ एव उस समय वह केवल छ वष का बालक था, उस एसी भयकर लडाई म अकबर कस भज सकता था।

२ राज प्रशस्ति म भी यही भूल हुई है कि बादशाह अपने बेटे शेखू बाबा को मवाड म छोड गये थे लकिन यह विवरण भी सवत् १६३२-३३ (सन् १५७५–७६ ई०) का है। उस समय शाहजादा छ वष का बालक ही था।

---

१ जगदीश-मन्दिर की प्रशस्ति शिला १ श्लोक स० ४१। वीर०, २, पृ० ३८७। (स०)।

३ मेवाड के हिन्दी इतिहासों में इससे भी कहीं अधिक भ्रांतिपूर्ण बातें लिखी हैं जैसे महाराणा को सिकानिग्या[1] का सूचनाएँ देते रहना बादशाह के जनानखाने में पहुँच कर महाराणा का बादशाह की मूँछ काट लाना आदि। ये बातें किसी भी तरह मानने योग्य नहीं है।

महाराणा के राजलोक और कुंवर—

महाराणा के निम्नलिखित १२ रानियां थीं। उनका ब्यौरा यों है —

२ चौहान,
२ पवार
१ सोलंकिनी
४ राठोड (जोधपुर मेडता और ईडर राजवंश का)
१ झाली हलवद की
१ हाडी - बूंदी की और
१ देवडी - सिरोही की।
———
१२

महाराणा के कुंवरों के बारे में मतभेद है लेकिन ये छः पुत्र प्रसिद्ध हुए थे—[2]

१ अमरसिंह—जन्म चैत्र सुदी ७ १६१६ ।[3] पूरबिया चौहान मुबारक खां का भानजा और अशोकमल का दोहिता था।

२ सखरा
३ कल्याणदास
४ कचरा,

---

१ अदृष्ट वक्ता - भविष्य तथा दूर क्षेत्रीय बातों को बता सकने वाला।
२ महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ (महाराणा प्रताप के परिजन) में इनके अतिरिक्त सीहा भगवानदास गोपाल माधवदास दुर्जनदास चान्दा हाथी रायसिंह जसवन्तसिंह माना नाथा और रायभाण बारह नाम दिये हैं। (सं०)।
३ गुरुवार मार्च १८ १५५९ ई०।

७ सहसा—अपने बडे भाई अमरसिंह की विपत्ति के समय में उसने उसकी बहुत सेवा की। इसका पुत्र भोपत बडा दातार हुआ। वह महाराणा की ओर से शाही सेवा करता था।

८ पूरणमल—वह संवत् १६९४ वि०[1] जोधपुर आया। संवत् १७०० वि० तक उसको जोधपुर राज्य के अन्तर्गत जागीरें प्राप्त हुई थीं।

---

१ नैणसी० (प्रतिष्ठान १ पृ २८) के अनुसार पूरणमल सं० १६९८ वि० को जोधपुर चला गया था और सं० १६९९ में उसे मेडता का गाँव ढाङा सहित ४ गाँव जागीर में मिले थे। (सं०)।

आम्बेर (जयपुर)

(१) राजा पृथ्वीराज, आम्बेर

राजा पृथ्वीराज आम्बेर के राजवश म बडा नामी और भगवद्भक्त हुआ है। अत आम्बेर के राजाआ के इतिहास म पृथ्वीराज का वर्णन कम और भगवान के भक्ता के चरित्रा म इस राजा का वर्णन अधिक मिलता है।

पृथ्वीराज सवत् १५५९ वि० का फागुण बदी ५[1] का अपने पिता राजा चन्द्रसेन के मरणोपरान्त आम्बेर की राजगद्दी पर बठा। इसके शासनकाल म भी उसके पिता के शासनकाल के समान ही कछवाहा की शेखावत और नरूका शाखाआ का बखेडा बना रहा। पृथ्वीराज न यथा-सभव प्रयत्न कर इनको दबाये रखा, और बाहरी शत्रुआ से भी राज्य का

१ मगलवार जनवरी १७ १५०३ ई०। (म०)।

बचाये रखा। पृथ्वीराज को इहलोक की अपेक्षा परलोक की अधिक चिन्ता थी, और सांसारिक सुख भोगने के स्थान पर उसको तपस्वी जीवन ज्यादा पसन्द था। उसने भोग-विलास को छोड़ कर जोगी चतुरनाथ से कठिन योग-साधना सीखी थी। योगी चतुरनाथ अपने समय का माना हुआ प्रसिद्ध तपस्वी था। प्राय गुरू और शिष्य दोनो ही अंबिकेश्वर महादेव के मंदिर में योग साधना और समाधि लगाया करते थे। एक दिन योगी ने प्रसन्न होकर पृथ्वीराज को वरदान दिया और उसने जाल के एक वृक्ष की तरफ इशारा कर के कहा कि इसी की तरह तुम्हारे वशजो का राज्य बना रहेगा।'

कुछ समय पश्चात् रामानन्द स्वामी का शिष्य कृष्णदास पयहारी भ्रमण करता हुआ आम्बेर पहुँचा। बीकानेर के राव लूणकरण की पुत्री पृथ्वीराज की बीकावत रानी बाल बाई ने साधु कृष्णदास को अपना गुरू बना लिया। इस कारण धर्म को लेकर राजा-रानी में वाद विवाद होने लगा। राजा अपने गुरू और शैवमत की प्रशंसा करता था, और रानी अपने गुरू और वैष्णव धर्म को श्रेष्ठ बताती थी। इसी तरह प्रजा में भी इन सम्प्रदायों के समर्थकों में स्थान स्थान पर धार्मिक वैमनस्यता को लेकर झगडे और बखेडे होते थे। अन्त में यहाँ पर राजा और रानी के धार्मिक शिक्षकों के मध्य शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें चतुरनाथ पराजित हो गया। कृष्णदास ने योगियों के स्थान गलता को इस शास्त्रार्थ में जीत कर वहाँ अपने सम्प्रदाय का गुरुद्वारा बनवाया। साथ ही (शैवमत मानने वाले) योगियों पर प्रतिदिन हवन के लिये लकडी के दो गठ्ठर लाने का दण्ड भी लगवा दिया। तत्पश्चात् राजा ने भी कृष्णदास से दीक्षा ली। कृष्णदास ने एक प्रतिमा नरसिंहजी की तथा एक सीतारामजी की पूजा के लिये राजा को दी और कहा कि जब तक आम्बेर में नरसिंहजी की यह प्रतिमा रहेगी, तब तक तुम्हारे वशजों का राज्य कायम रहेगा और सीतारामजी की प्रतिमा को युद्ध क्षेत्र में आगे रख कर युद्ध करोगे तो विजय होगी।' उसी समय से आम्बेर (जयपुर) राज्य में यह प्रथा चली आ रही है कि सवारी और युद्ध के समय सीताराम जी की सेवा का हाथी आगे रहता है। तभी से यह कहावत भी प्रचलित हो गई है कि, लड्डू खाने के लिये मदनमोहनजी और लड़ने के लिये सीतारामजी।

राजा के वैष्णव मत स्वीकार करने के कारण आम्बेर में बहुत से

लागो ने भी वष्णव मत स्वीकार कर लिया। अय क्षेत्रा म यह खबर फलन स दूर दूर क स्थाना स वष्णव साधु सत आम्बर म आन लगे। राजा न सभी साधुआ का आदर सत्कार किया और जगह-जगह भगवान के मन्दिर बनवाय। तत्पश्चात् उसने अपन गुरु के साथ द्वारिका की धम यात्रा पर जान का निश्चय किया। किन्तु राजकीय कमचारिया न राजा का द्वारिका जाना राज्य के अहित म समझ कर उसके गुरू कृष्णदास स प्राथना की कि वह राजा का अपन साथ नही ले जावे। अत गुरू ने भी राजा को द्वारिका जाने स मना कर दिया तथा कहा कि तुम्हारे लिये अपन राज्य म रहना ही उचित है। अगर तुम्हारी भक्ति सच्ची है तो तुम्हे यही पर द्वारिकानाथ के दशन हो जावेंगे।" यह सुन कर राजा बहुत उदास हुआ और तीन दिन तक भूखा प्यासा रहा। चौथी रात्रि म श्री रणछोड भगवान ने स्वय ही राजा को दशन दिये। राजा ने अपनी रानी बीकावत का भी जगाया। रानी न राजा के आग खडे होकर भगवान के दशन किये। भगवान के दशन म रानी एसी मग्न हो गई कि उसको समय ज्ञान ही नही रहा। उधर राजा भी भगवान की भक्ति और प्रम म अपन वतमान को भूल कर अपनी रानी को कहन लगा कि बाई[1] अगर दशन कर चुकी हो तो एक तरफ हट जा और मुझे भी दशन करने दे। रानी ने यह सम्बोधन सुन कर राजा की तरफ देखा तथा कहा कि तुमने मुझे बाई कस कहा? राजा को वस्तुस्थिति का भान होन पर वह बहुत शर्मिन्दा हुआ। उसी दिन स यह रानी अपन ससुराल म बाला बाई के नाम स पुकारी जान लगी।

बालाबाई स राजा को विशेष प्रेम था। अन्य रानियों की तुलना म उसक सन्तान भी अधिक थी। उसक कुल ११ पुत्र थ जिनके वशज आज भी जयपुर के राज्य म राजा क अतिरिक्त जयपुर के बडे बडे जागीरदार है।

जयपुर म आज भी बाला बाई के नाम की विशेष मान प्रतिष्ठा है। आम्बेर म अन्य देवी देवताओं के मन्दिरा की पूजा के समान ही बाला बाई के बठन की साल[2] की आज भी पूजा होती है।

राजा पृथ्वीराज ने लगभग पच्चीस वष तक राज्य किया। वह सवत्

---

१ बाई शब्द पुत्री या बहिन के लिये ही प्रयुक्त होता था। (स०)।
२ एक प्रकार का बडा कमरा। (स०)।

१५८४ के कार्तिक में मरा।[1] टाड ने अपने इतिहास ग्रंथ[2] में लिखा है कि राजा पृथ्वीराज भगवान के स्नान करने के लिये द्वारिका गया था। मार्ग में उसके पुत्र भीम ने जो राक्षस वृति का था उसको मार डाला। तब उसके सरदारों ने भीम के पुत्र आसकरण को, भीम को मारने के लिये तैयार किया तथा कहा कि तीर्थ यात्रा द्वारा इस पाप का प्रायश्चित कर लेना।' पता नहीं यह बात कहाँ तक सत्य है? क्योंकि जहाँ तक मुझे (देवीप्रसाद को) मालूम है जयपुर की तवारीख में ऐसी कोई बात नहीं पायी गई है।

राजा पृथ्वीराज के ९ रानियाँ थी जिनसे उसके कुल १९ पुत्र हुए —

१ तंवर रानी के पूरणमल हुआ।
२ बीकावत रानी की कोख से भीम, सांगा, पचाण, भारमल, गोपाल, सुरताण, जगमाल, बलभद्र, रायमल, चतुर्भुज, महेशमल नामक ११ पुत्र हुए।
३ बडगूजर रानी से प्रतापसिंह और रामसिंह नामक पुत्र हुए।
४ सीसोदिनी रानी से कल्याणदास और भीखा नामक पुत्र हुए।
५ गौड़ रानी से रूपसी बैरागी नामक पुत्र हुआ।
६ सालंकिनी रानी से साईदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजा पृथ्वीराज के इन पुत्रों का वंश दिन प्रतिदिन बढ़ता गया और कुछ के प्रमुख वंशजों के तो बड़ी बड़ी जागीरें भी हैं। उनमें से कुछ जागीरों की आमदनी तो एक समय की सम्पूर्ण रियासत की आमदनी के बराबर थी।

पूरणमल के वंशज पूरणमलोत, भीम के वंशज में नरवर के राजा, पचाण के वंशज पचायणोत, गोपाल के वंशज गोपावत, सुरताण के सुरताणोत, चतुर्भुज के वंशज चतुर्भुजोत तथा रूपसी के वंशज रूपसी और बैरागी कछवाहा के नामों से प्रसिद्ध हैं। सांगा के कोई पुत्र नहीं हुआ किन्तु सांगानेर बसाने से उसका नाम औलाद वालों से ज्यादा प्रसिद्ध है।

---

१ अक्तूबर नवम्बर १५२७ ई०। (स०)।
२ टॉड राजस्थान० (आ० स०) पृ० १३२७। (स०)।

जयपुर राज्य के प्रमुख सरदारों में १२ सरदार केवल पृथ्वीराज के वंशज हैं। जिनकी जागीरें बारह कोटडी कहलाती हैं। उनमें से चोमू और सामोद के नाथावत वगैरह के चतुर्भुजात डिग्गी के खंगारोत, अचरोल के बलभद्रोत सरदार जयपुर राज्य में अत्यधिक बलशाली और अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

राजा पृथ्वीराज का समकालीन दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी था। संवत् १५८२ वि० (सन् १५२६ ई०) में मुगल बादशाह बाबर ने उसके पुत्र इब्राहिम लोदी को युद्ध में परास्त करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया था। मारवाड में राव सूजा राज्य करता था और उसके पश्चात् संवत् १५७२ वि० (सन् १५१५ ई०) में राव गांगा राजगद्दी पर बैठा। चित्तौड में राणा रायमल था। उसके मरणोपरान्त संवत् १५६६ वि० (सन् १५०९ ई०) में महाराणा संग्रामसिंह सिंहासन पर बैठा जो आगे चल कर राणा सांगा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐसा कहा जाता है कि राणा सांगा अपने राज्यारोहण से पहले अपने भाइयों के आपसी झगडों के कारण मेवाड छोड कर आम्बेर चला गया। वह सिपाही के भेस में राजा पृथ्वीराज के यहां सेवा करने लगा और रात्रि के समय वह राजा पृथ्वीराज के महल का पहरा देने लगा। एक बार वर्षाकाल में सावन भादों की काली काली घटाओं में रात्रि का अंधेरा बहुत बढा हुआ था और सांगा महल के नीचे खडा पहरा दे रहा था। उसी समय वर्षा होने लगी। पहाड के ऊपर से वर्षा का पानी इतनी तीव्र गति से गिरने लगा कि उसकी आवाज सांगा के कानों को बुरी लगी। उसने सोचा कि पानी की यह आवाज मेरे से भी ज्यादा राजा को भी खराब लग रही होगी। इसी विचार में उसने एक बडा सा घास का गट्ठर जो पास ही पडा था, उठा कर पानी के गिरने के स्थान पर डाल दिया। फलतः पानी की वह नापसन्द आवाज तुरंत ही बन्द हो गयी। दैवयोग से उस रात्रि में पृथ्वीराज की सीसोदिनी रानी जो सांगा की फूफी (बुआ) थी पृथ्वीराज के साथ थी। उसने पुनः वह बेचैन कर देने वाला शोर नहीं सुना तो राजा से कहा कि अब वर्षा बन्द हो गयी है। राजा ने कहा कि वर्षा तो हो रही है परन्तु आश्चर्य है कि नाले का पानी गिरना कैसे बन्द हो गया है? अतः उसने एक सेविका को इसका कारण जानने के लिये भेजा।

उसने वापस आकर निवेदन किया कि नाला तो वैसा ही गिर रहा है, लेकिन पहर पर खड़े सिपाही ने नाले के नीचे घास रख दी है, जिससे पानी के गिरने से गिरने की आवाज नहीं होती है।" राजा यह सुनते ही समझ गया कि पहर पर खड़ा होने वाला साधारण सिपाही नहीं है। वह कोई अमीर या अमीर का पुत्र है जिसको पानी की यह आवाज पसन्द नहीं थी और पूर्ण व्यवस्था करने वाला भी है जिसने तुरन्त ही उपाय करके पानी की आवाज भी बन्द कर दी। राजा ने अपना यह विचार रानी के समक्ष भी प्रकट कर दिया। तब रानी ने कहा कि मैंने सुना है कि मेरा भतीजा सांगा घर छोड़ कर निकल गया है। कहीं पहर पर वह ही तो नहीं है क्योंकि वह भी इसी तरह का आदमी है। अतः राजा ने उसको पहर से बुलवाया और गुप्त रूप से उसको रानी को भी दिखा दिया। रानी ने सांगा को पहचान लिया। इस पर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने राणा सांगा का बहुत आदर-सत्कार किया और कहा कि मुझ से सारी बात क्या छिपायी थी? क्या मैं कोई पराया था? तब उसी दिन से राणा सांगा का आदर-सत्कार होने लगा। कुछ समय के पश्चात् राणा सांगा राजा पृथ्वीराज से अनुमति लेकर वापस अपने घर (मेवाड़) चला गया और अपने पिता के मरणोपरान्त राज गद्दी पर बैठ कर बड़ा वैभवशाली शासक बना।

(२) राजा पूरणमल कछवाहा

राजा पृथ्वीराज के बाद उसका बड़ा पुत्र पूरणमल कार्तिक सुदी १२ सम्वत् १५८४ वि०[1] को आम्बेर की गद्दी पर बैठा। उस समय मुगलों की सत्ता हिन्दुस्तान में स्थापित हो गई थी। बाबर के मरणोपरान्त दिल्ली के सिंहासन पर बादशाह हुमायूं बैठा। राजा पूरणमल ने बादशाह की आधीनता स्वीकार की और राजा के खिताब के अतिरिक्त माहीमरातिब भी प्राप्त किया। वह अपने वंश में पहला शासक था जिसने मुगल बादशाहों से मित्रता बनाने की नींव रखी था। इसके बाद ही इसी नींव पर एक भव्य इमारत का निर्माण किया गया। जिससे इमारत और बनाने वालों का नाम इतिहास में प्रसिद्ध हुआ।

---

१ मंगलवार नवम्बर ५ १५२७ ई०।

राजा पूरणमल ने मिर्जा हिन्दाल[1] के विरुद्ध युद्ध करके अपनी जान देकर बादशाह हुमायूं की मेहरबानियों का बदला चुकाया। वह बादशाह का भाई होते हुए भी बादशाह (हुमायूं) का विरोधी था।

इस प्रकार इस राजा ने जो रामचन्द्र के वंशजों में से पहला व्यक्ति था मुगल बादशाह के आपसी युद्ध में माह सुदी ५ संवत् १५९० वि०[2] के दिन अपना खून बहाया। इस वसन्त ऋतु में जबकि दूसरे राजा और राव अपने महलों में अपनी रानियों के साथ रंग और गुलाल से खेल करते हुए आनन्द मना रहे थे इस बहादुर राजा ने युद्ध मैदान में मुसलमानों से अपने खून की होली खेली थी।

राजा पूरणमल के दो रानियां राठोड और चौहान जाति की थी। उसके केवल एक पुत्र सूरजमल अभी केवल दो वर्ष का बालक मात्र था। इसी कारण वह अपने पिता का उत्तराधिकारी नहीं बना। उसकी मां बालक के चाचा भीम के डर से भयभीत होकर अपने बच्चे को लेकर अपने पिता के वहाँ चली गई। और भीम जो राजा पूरणमल के समय में राज्य कार्य का सम्पूर्ण भार सम्भाले हुए था और जिसको टाड ने पितृहन्ता बताया है पूरणमल के बाद आम्बेर की गद्दी पर बैठा।

---

१ अकबर नामा में केवल इतना लिखा है कि राजा पूरणमल मिर्जा हिन्दाल की लड़ाई में मारा गया। इसके अलावा कहीं पर भी पूर्ण विवरण नहीं मिलता है। मगर यह एक किवदन्ती प्रसिद्ध है कि बादशाह हुमायूं द्वारा मिर्जा हिन्दाल को अलवर और मेवात का प्रदेश दिया था। वहाँ से हिन्दाल ने शखावतों पर आक्रमण किया और राजा पूरणमल शखावतों की सहायता करता हुआ इस युद्ध में मारा गया। (दवी०)।

२ सोमवार जनवरी १० १५३४ ई०।

(३) राजा भारमल कछवाहा

आषाढ़ कृष्णा ८ संवत् १६०४ वि०[1] के दिन राजा भारमल आम्बेर के सिंहासन पर बैठा, उस समय दिल्ली में शेरशाह सूर का पुत्र सलीमशाह सूर था। राजा आसकरण तीर्थ यात्रा करता हुआ सलीमशाह सूर के पास पहुँचा और अवसर पाकर उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तांत बादशाह को निवेदन किया। बादशाह ने हाजी खां पठान को राजा आसकरण की मदद के लिये जाने का आदेश दिया। अतः हाजी खां ने आम्बेर पर चढ़ाई की। राजा भारमल ने हाजी खां से समझौता कर अपने भाई रूपसी को बादशाह सलीम शाह सूर के पास भेजा। इधर आसकरण भी बादशाह के दरबार में पहुँचा और उसने याद दिलाई कि वह सेना (हाजी खां) तो मुझे मेरा राज्य दिलाने के लिये भेजी गयी है। रूपसी ने भी बादशाह से निवेदन किया कि नरवर

---

१ शनिवार ११ १५४७ ई०।

का प्रदेश हमारा प्राचीनतम स्थान है और बहुत समय से वह हमारे अधिकार म नही है, वह पुन आसकरण को दिलवा दें। बादशाह न नरवर आसकरण को दिला दिया और आबर भारमल के पास ही रख कर हाजी खा को पुन दरबार म बुला लिया।

सवत् १६१२ वि० (१५५५ ई०) म हुमायू बादशाह न जिसको कुछ समय पहले शेर खा ने हिंदुस्तान से खदेड दिया था, अब पुन काबुल की तरफ से आकर सलीमशाह के बेटा का हटा कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। लकिन इस विजय के छ माह बाद ही वह मर गया। उसका पुत्र अकबर पजाब म सिंहासनारूढ हुआ। ऐसी परिस्थिति म पठाना ने मुगला को निकालने का प्रयत्न किया और हाजी खा न आगे बढ कर नारनौल का किला घेर लिया। राजा भारमल भी हाजी खा के साथ था। वहाँ का किलेदार मुबाजर खा[1] पठाना की शक्ति को देख कर घबरा गया। लकिन राजा भारमल ने बीच बचाव करके नारनौल का दुग हाजी खा को सौप दिया और किलेदार मुबाजर खा को उसके माल असबाब सहित सुरक्षित रूप से वहाँ स निकाल दिया। कुछ समय पश्चात् जब अकबर बादशाह पजाब से दिल्ली पहुँचा तब नारनौल के उक्त किलेदार न बादशाह का राजा भारमल द्वारा की गई सहायता का विवरण बडी प्रशसा के साथ सुनाया। बादशाह ने भी प्रसन्न होकर राजा का दरबार म बुलाने का आदेश दिया। अत वही किलेदार राजा भारमल के पास गया और उसको बादशाह के पास दिल्ली ले लाया। बादशाह न राजा का सत्कार और सम्मान किया। बादशाह न कुछ समय तक राजा का अपने पास रखा और फिर उसको आबर जाने की स्वीकृति दी।

जिस दिन राजा भारमल और उसके भाई बेटा को बादशाही खिलअत मिले और उनको विदाइ के लिय बादशाह के पास ले गये उस समय बादशाह अकबर एक मस्त हाथी पर सवार था और वह हाथी अपनी मस्ती म इधर उधर दौड रहा था। वहाँ उपस्थित सभी लोग हाथी म डर कर इधर-उधर भागते थे। हाथी अपनी मस्ती म एक बार इन राजपूतो

१ किसी पुस्तक म मजनू खा लिखा है। (दवी०)। अ० ना० (अ० अ०) २ पृ० ३६। (ब०)।

परशान है और पहाडा म छिपा हुआ है।' बादशाह ने कहा कि 'ऐसे शुभ चिन्तक को सता कर मिर्जा ने बहुत बुरा किया। अब तुम जाओ और उसे सान्त्वना देकर बादशाही दरबार म ले आओ। हम उसके साथ मेहरबानी स पेश आवग। यह सुन कर चगत्ताई खा उसी दिन राजा का लान के लिय रवाना हो गया

जब बादशाह फौज सहित दौसा पहुँचा तब वहा के हाकिम और राजा भारमल के भाइ रूपसी ने अपन पुत्र जयमल को बादशाह क पास भजा। बादशाह को जब जयमल के उपस्थित होने का समाचार मिला तो उसन कहा जयमल का दरबार म उपस्थित हाना मान्य नही है। हमारे आगमन को ईश्वरीय देन समझ कर रूपसी स्वय दरबार म उपस्थित हो। बादशाह का यह आदेश सुन कर रूपसी शीघ्र हा दरबार म उपस्थित हुआ। बादशाह ने उस पर बडी कृपा की। कुछ दिन पश्चात् चगत्ताई खा साभर के शाही पडाव पर राजा भारमल का उसके सभी भाई बेटा सहित बादशाही दरबार म ले आया। इस समय राजा का ज्यष्ठ और उत्तराधिकारी पुत्र कुवर भगवतदास आम्बेर की सुरक्षा हेतु वही रहा और शाही दरबार म उपस्थित न हो सका। बादशाह न राजा पर बडी मेहरबानी की तथा कुछ दिनो के बाद अमीर चगत्ताई खा के साथ उसको एक विशेष काय के लिय पुन आम्बेर भेज दिया।

मिर्जा शरफुद्दीन ने अजमेर स आकर (साभर क पडाव पर) बादशाह को सलाम किया तब बादशाह ने उसको जगन्नाथ आदि राजा भारमल के पुत्र और कुटुम्बिया को दरबार म उपस्थित करन का आदेश दिया। मिर्जा कुछ दिनो तक तो बहाने बना कर टालता रहा लेकिन अजमेर पहुँच कर मिर्जा को मजबूर होकर इन सबको बादशाह क सामन उपस्थित करना ही पडा। बादशाह उन सब को देख कर अति प्रसन्न हुआ। साथ ही राजा भारमल के पास भी इनकी रिहाई की सूचना पहुँचा दी।

अजमेर स वापस लौटते समय साभर म बडी धूमधाम क साथ बादशाह की शादी हुई। दूसरे दिन रतनपुर नामक स्थान पर राजा भारमल पुन अपने सभी भाइ बेटो क साथ बादशाह के दरबार म उपस्थित हुआ और निवेदन किया कि 'हजरत (बादशाह) आम्बेर पधारें।' बादशाह न

कहा कि इस समय आगरे जाना बहुत ही आवश्यक है, अगर कभी वापिस इधर आना हुआ और समय मिला तो निश्चय ही तुम्हारे घर आवेंगे।' यह कह कर बादशाह ने राजा पर बहुत मेहरबानी की और उसको विदा किया। किन्तु उसके पौत्र मानसिंह को होनहार बालक देख कर अपने साथ ले लिया। कुंवर (मानसिंह) का पिता भगवन्तदास जो स्वयं भी कुंवर ही था, अपनी इच्छा से बहुत से भाई भतीजों और सहयोगी राजपूतों सहित बादशाह की सेवा में रह गया और उसके साथ ही आगरा गया।

इधर राजा भारमल ने बादशाह की हिमायत से साहस पाकर नाहण पर चढ़ाई की। यह शहर टोडा-भीम के पहाडों में स्थित मीणों की बस्ती था। इस शहर के ५२ बुर्ज और ५६ दरवाजे थे। यहां पर एक मीणा राज्य करता था। वह बड़ा बहादुर था। लेकिन जब उसने अपनी प्रजा से मूसा तक भी कर लेना शुरू कर दिया था तो प्रजा उससे नाराज हो गई थी। राजा भारमल भी बहुत वर्षों से किसी उचित अवसर की तलाश में था। अतः उसने नाहण पर आक्रमण कर दिया और मीणों को मार कर उस सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इस विजय से ढूंढाड प्रदेश में मीणों का राज्य समाप्त हो गया। अब वे सभी राजपूतों के वहां नौकरी करने लगे। नाहण राज्य के कारण मीणों की जो लूटमार आम्बेर राज्य में होती रहती थी वह भी बन्द हो गई। राजा और प्रजा अब शान्ति से रहने लगे।

राजा भारमल ने नाहण के ५० दरवाजे तोड कर उस शहर को उजाड डाला और उसी के पास दूसरा शहर लिवाण नाम से बसाया।

इस प्रकार राजा भारमल अपने राज्य में शांति स्थापित कर बादशाह के पास आगरा गया। बादशाह ने उसका बड़ा सम्मान किया। बादशाह राजा पर बहुत विश्वास करता था। जब कभी बादशाह किसी दूरस्थ सैनिक अभियान पर जाता उस समय राजा को राजधानी की व्यवस्था और सुरक्षा हेतु छोड जाता था। उसका पुत्र भगवन्तदास और पौत्र मानसिंह सदैव बादशाह के साथ रहते थे। इनको कभी कभी अलग कार्यों पर भी नियुक्त किया जाता था।

सवत् १६२५ वि०[1] म जब बादशाह अकबर रणथम्भार का दुग जात कर अजमेर म आगरा जा रहा था, तब माग म अपन वायदे के मुताबिक वह आम्बेर भी गया। लेकिन उस समय राजा भारमल वहाँ पर नही था। उसके पुत्र भगवन्तदास ने बादशाह की अच्छी तरह म मेहमानदारी और अच्छी नजर-निछरावल भी की।

सवत् १६२९ वि०[2] म जब बादशाह गुजरात विजय के लिय रवाना हुआ तो सदा की तरह राजा भारमल को आगरा म ही छोडा गया। राजा ने अपने भाइया और पुत्रा को जगह-जगह पर नियुक्त कर आगरे का बड़ा अच्छा प्रबध किया और किसी भी प्रकार की कोई अप्रिय घटना नही होन दी। इसक अतिरिक्त उन दिना के विद्रोही मिर्जा इब्राहिम हुसन और मिर्जा मुजफ्फर हुसन द्वारा दिल्ली पर चढाई का जब सुना, तब उसने अपन भतीज खगार और दूसर कछवाहा सरदारा को उन विद्रोहिया को भगान के लिय भेजा। खगार ने दिल्ली की सुरक्षा का बहुत अच्छा प्रबध किया। मिर्जा न जब उधर जान म कुछ लाभ नही दखा तो वह सभल की तरफ चला गया।

माघ शुक्ला ५ सवत् १६३० वि०[3] को राजा भारमल की मृत्यु हो गई। उसन आम्बेर पर २५ वष ७ माह और १२ दिन तक राज्य किया।

राजा भारमल के ९ रानिया थी जिनम सोलकी मालवा प्रात की पद्मावती, चौहान और राठौड रानिया प्रमुख थी। राजा के १० पुत्र थ—

१ भगवन्तदास— राजा क मरणोपरान्त आम्बेर की गद्दी पर बैठा।

२ भगवानदास— इसको भी बादशाह न राजा और बाको कछवाहा की पदवी प्रदान की थी। इसकी सन्तान निवाणा क राजा और बाकावत कछवाहा कहलाती है।

---

१ १५६९ ई०।

२ १५७२ ई०।

३ बुधवार जनवरी २७ १५७४ ई०।

३ जगनाथ— इसको टोडा का इलाका जागीर में मिला था और यह भी बादशाही मनसबदार था।

४ भोपतसिंह।

५ शार्दूलसिंह— इसको मालपुरा जागीर में मिला था।

६ सुन्दरदास— इसको चाटसू जागीर में मिला था।

७ पृथ्वीदेव।

८ सबलदेव।

९ रूपचन्द।

१० परसराम।

राजा भारमल बड़ा चतुर और दूरदर्शी था। उसके समय तक आम्बेर राज्य की स्थिति दुर्बल थी। राजा को गृह कलह में भी चैन नहीं था। जब वह गद्दी पर बैठा उस समय आम्बेर राज्य की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उस वक्त यह किसी को विश्वास नहीं होगा कि यह राज्य इसी राजा के वंशजों के पास रहेगा क्योंकि उस समय राज्य के अनेक दावेदार थे। मुगल पठान जाति जो तत्र हाकिम थे सभी राजा से ईर्ष्या करते थे। किन्तु राजा ने अपनी चतुराई से कुछ ऐसी राजनैतिक चालें चलीं जिनसे राज्य के दूसरे दावेदारों को समाप्त कर दिया और आम्बेर राज्य को अपने वंशजों के लिये सुरक्षित कर दिया।

(४) राजा भगवन्तदास कछवाहा

राजा भारमल के पश्चात् माह सुदि ६ १६३० वि०[1] के दिन भगवन्तदास फतहपुर में अपने पिता भारमल की गद्दी पर बैठा। बादशाह अकबर ने ही उसको राज्य का टीका प्रदान किया था। वह बहुत पहले से ही बादशाह अकबर की सेवा में रहता था। वि० सं० १६१८ में जब रतनपुर के पडाव से बादशाह अकबर ने भगवन्तदास के होनहार पुत्र कुंवर मानसिंह को अपने साथ ले गया उसी समय से भगवन्तदास भी स्वेच्छा से बादशाह के साथ हो गया था। वह हमेशा बादशाह के पास रहा और बादशाह की बहुत अच्छी सेवा की। फलस्वरूप बादशाह के दिल में उसका स्थान बनता गया और वह बादशाहत (मुगल साम्राज्य) का एक स्तम्भ माना जाने लगा। उसने अपनी सेवा से शाही दरबार में जो स्थान बना लिया था वहाँ तक तब कोई दूसरा राजा नहीं पहुँच सका।

भगवन्तदास के बादशाह की सेवा में उपस्थित होने के समय बादशाह जवान था और जवानी के जोश में छोटी छोटी चढ़ाइयों में भी वह स्वयं जाता था। उदाहरण स्वरूप दूसरे ही वर्ष बादशाह परगना जठगन[3] के

---

१ गुरुवार जनवरी २८ १५७४ ई०।

२ १५६२ ई०।

३ सही नाम पराख' है। अ० ना० (अं० अ०) २ पृ० २५१ ५५

विद्रोही जमादारो को दबाने के लिये बहुत कम सेना के साथ रवाना हो गया था। उस समय अत्यधिक गर्मी के कारण सिपाही घबराने लग गये तथा धूप से बचने के लिये जहाँ तहाँ वृक्षो की आड लेने लगे। बादशाह स्वय कुछ सैनिकों के साथ उन विद्रोही जमीदारो से लडता रहा। उस समय भगवन्तदास और कुंवर मानसिंह ने युद्ध मे बादशाह का सहयोग दिया। उन्होंने दुश्मनो को भी मारा और बादशाह को पानी भी पिलाया।

संवत् १६२४ वि० (१५६८ ई०) मे बादशाह अकबर ने जब चित्तौड पर चढाई की, उस समय भी राजा भगवन्तदास बादशाह के साथ था। उसने अपने अनुभव और उचित सलाह देकर बादशाह की बहुमूल्य सहायता की। एक रात्रि मे बादशाह अकबर ने चित्तौड दुर्ग पर कवच पहिने हुए एक व्यक्ति को मशाल की रोशनी मे काम करते हुए देखा। उसने तुरन्त ही अपनी निजी बन्दूक से उस पर गोली चलाई। कुछ समय पश्चात् किले मे बहुत मात्रा मे उजाला दिखाई दिया। इसका कारण किसी को भी समझ मे नही आया। अन्त मे राजा भगवन्तदास ने अपनी बुद्धि से विचार करके बादशाह की सेवा मे निवेदन किया कि सभवत बादशाह की गोली से कोई महत्त्वपूर्ण सेनानायक मारा गया है। फलत दुर्ग मे रहने वाले दूसरे राजपूत हताेत्साहित होकर जौहर कर रहे है, अर्थात वे अपना सम्पूर्ण माल असबाब, बाल बच्चो और स्त्रियो को जलती हुई आग मे जला रहे है। उसी आग से यह उजाला हो रहा है। अब यह आशा हो गयी है कि जल्दी ही दुर्ग पर अधिकार हो जावेगा। वास्तव मे ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन किले वाले दुर्ग के दरवाजो को खोल कर बादशाही सेना पर टूट पडे और उन सबके मारे जाने पर किले पर बादशाह का अधिकार हो गया। तथा बादशाह ने जिस व्यक्ति पर बन्दूक से गोली चलाई थी वह जयमल राठौड था और जिसके मरणोपरान्त ही चित्तौड मे जौहर हुआ था।

दूसरे वर्ष बादशाह अकबर रणथम्भोर को जीत कर आगरे जाते हुए आम्बेर मे भी ठहरा। इस समय राजा ने बादशाह का बहुत अच्छा स्वागत किया और बहुमूल्य वस्तुएं भेंट की।

सं० १६२६ वि० (१५७० ई०) मे बादशाह को जैसलमेर मे एक बलिष्ठ सेनानायक भेजने की आवश्यकता हुई। इस कार्य के लिये भी

राजा भगवन्तदास का ही चुनाव किया गया। राजा (भगवन्तदास) जसलमेर गया और वहा के रावल हरराज को अधीनता स्वीकार करवा कर बादशाह क लिये एक डोला भी लाया।

सवत् १६२९ वि० (१५७२ ई०) म बादशाह अकबर गुजरात विजय करन गया तो उस समय भी सदव की तरह राजा भगवन्तदास उसके साथ था। इस समय खभात के निकट मिर्जा मुजफ्फर हुसन स मुकाबला हुआ जिसके पास करीब १००० घुडसवार थे। बादशाह सम्पूर्ण सेना को छोड कर क्वल २५० राजपूत सनिको सहित ही लडने के लिये आगे गया। कुंवर मानसिह ने महन्दी नदी स पार उतर कर मिर्जा पर आक्रमण किया। इस समय बादशाह अकबर दो ऐसी तग जगह पर शत्रुओ से घिर गया जहा पर दोनो ओर काटो की बाड था और सामने स तीन शत्रुओ ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा भगवन्तदास न शीघ्रता क साथ अपना घोडा बादशाह अकबर की सहायता क लिये आगे बढाया। उसने एक शत्रु सनिक को बर्छे से मार गिराया तथा दूसरे को घायल कर भगा दिया। इस वीरता को देख कर अकबर भी राजा को सहायता पहुँचाने आगे बढा। राजा के भाई भोपत स यह सब नही देखा गया। उसने अकेले ही तीव्रता स आगे बढ कर शत्रुओ स ऐसा भयकर युद्ध किया कि उसके समक्ष प्रसिद्ध योद्धा रुस्तम और असफद्यार खा का लडाई भी नहा क बराबर हो गया। वह शत्रु पक्ष के अनेक सनिको को मार कर स्वय भी मारा गया। बादशाह अकबर को उसके मरने का बहुत रज और अफसोस हुआ। इस युद्ध म विजय क पश्चात् अकबर ने विशेष रूप स भोपत का मातमपुरसी की।

सवत् १६३० वि० (१५७३ ई०) म मिर्जा मुहम्मद हुसन और गुजरातियो ने गुजरात पर अधिकार कर लिया। अत बादशाह अकबर ने वर्षा क मौसम मे ही २०० ऊँट सवारो क साथ जिनम कई हिन्दू राजा भी थे और अधिकतर राजा भगवन्तदास के भाई भतीजे ही थ उन पर चढाई की। और नौ दिन म ही अहमदाबाद के पास पहुँच गया। इस समय बादशाह स्वय कवच पहन कर युद्ध क लिये तयार हुआ। अपने साथियो को भी कवच और शस्त्र आदि युद्ध का सामान वितरित करने लगा। राजा भगवन्तदास का चाचा रूपसी का पुत्र जयमल उस समय एक बडा भारी कवच पहने हुए था। बादशाह न उसको कम वजन वाला हलका कवच प्रदान किया और

उसका भारी कवच जोधपुर के राव मालदेव के पौत्र करण को दिया दिया। लेकिन रूपसी और राव मालदेव के खानदान म वमनस्य होन से वह बादशाह के इस काय पर नाराज हो गया। तथा उसी समय अपना अनुचर बादशाह के पास भेज कर वह कवच मगवाया। बादशाह अकबर ने इस पर उत्तर दिया कि मैंने अपना निजी कवच जयमल को दिया है इसके बाद उक्त कवच को मागना उचित नही है। बादशाह का यह उत्तर सुन कर रूपसी ने अपना कवच भी खोल दिया और कहा कि अगर वही कवच नही मिला तो मैं दूसरा कवच भी नही कवच पहनूगा। यह सुन कर बादशाह ने भी अपना कवच व शस्त्र आदि खोल लिये और कहा कि, इस युद्ध म हमारे सैनिक अगर नग्न बदन जान देने के लिये तयार है, तो मेरे लिये भी कवच पहनना और शस्त्र बाधना उचित नही है। राजा भगवन्तदास अपने चाचा के इस अशिष्टतापूर्ण व्यवहार के कारण बहुत नाराज हुआ। उसको नम्र-नम्र बाता म समझा कर बादशाह के पास ले गया और निवेदन किया कि 'इस नादान जवान स भग के नशे म बहुत बार ऐसी हरकतें हो जाया करता हैं अत आप इस को माफ करे।' राजा के निवेदन पर बादशाह ने रूपसी को माफ कर दिया और युद्ध के लिये आगे रवाना हुए। रवाना होते समय जब बादशाह ने चलने का आदेश दिया उसी समय नूरबेजा नामक खासा सवारी का घोडा नीचे बठ गया। राजा भगवन्तदास न इसको अच्छा शकुन देख कर बादशाह को गुजरात विजय के लिये बधाई देते हुए कहा कि हिन्दुस्तान के जानकारो ने तीन बातो स विजय को सुनिश्चित माना है।

१ प्रथम, सरदार का घोडा सवारी के समय इसी तरह जमीन पर बठ जाव।

२ द्वितीय सेना के पृष्ट भाग स आगे की तरफ हवा का रुख हो तो वह जीत की हवा मानी जाती है।

३ चील और कौवो का सेना के साथ होना जैसा कि इस समय हमारे साथ है। इन पक्षियो स यह आशय है कि वे शत्रुओ के रक्त के प्यासे है।

इस प्रकार से मंजिलें तय करता बादशाह शत्रु तक पहुँचा और उसस युद्ध किया। इस समय राजा भगवन्तदास और कछवाहा राजपूतो न

बादशाह के साथ (जलब म) रह कर घमासान युद्ध किया। राघवदास इस समय नि शस्त्र था और वह मुक्का स युद्ध करता हुआ मारा गया। मिर्जा भी घमासान युद्ध करता हुआ घायल होकर बन्दा बना लिया गया। तथा उसको बीकानर क राव रायसिंह की देख-रख म रखा गया जहा वह राजा भगवन्तदास क प्रयत्न स मारा गया। इस प्रकार गुजरात दूसरी बार अधिकार मे आया।

बादशाह न राजा भगवन्तदास को आदेश दिया कि वह ईडर क माग स होकर आगरा पहुँचे तथा माग म आन वाले राजाओ और रावो को भी अधीनता स्वीकार करने के लिय मजबूर करे। राजा भगवन्तदास न सव प्रथम वडनगर के दुग पर आक्रमण किया। उस पर रावलिया नामक एक गुनाम अधिकार जमाये बठा था। राजा के आगमन की सूचना मिलन पर किले क भीतर छिप गया। राजा भगवन्तदास न दुग को घेर लिया और जगह-जगह स रसद के रास्ता को बद कर दिया। रावलिया जोगी क भेस म किला खाली कर निकलन लगा लकिन वह पकडा गया। राजा भगवन्तदास न किले म बादशाही थाना बठाया और स्वय ईडर की तरफ रवाना हुआ। ईडर के राव नारायणदास न भगवन्तदास की अगवानी की तथा उसकी महमानदारी की। उसको कुछ दिनो तक वहा रखा और बादशाह क लिय अच्छी पशकश दकर बिदा किया।

राजा (भगवन्तदास) ईडर से रवाना होकर उदयपुर राज्य म पहुँचा। गोगुन्दा म राणा प्रतापसिंह उसकी अगवानी करक उसको अपन निवास स्थान पर ले गया और उसका अत्यधिक सम्मान किया। एक दिन खाना हो खाना म राजा भगवन्तदास न राणा को कहा कि आप बादशाह के पास क्यो नही चलत वहाँ प्रतिदिन आपक बार म चर्चा होती रहती है। राणा न उत्तर दिया कि अभी मुझे बादशाह पर विश्वास नही हो रहा है। धीरे धीरे जब मुझ विश्वास हो जावगा तब मैं स्वय चला आऊगा। अभी तो आप मेर पुत्र को ले जाव। राजा भगवन्तदास उनके पुत्र को लकर बादशाह क पास गया। राजा क इन कार्यो स बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुआ।

वश भास्कर[1] म लिखा है कि राजा भगवन्तदास न राणा को अपन साथ बठ कर भोजन करन को कहा। पहिले तो राणा ने इसक लिय बहाना

१ वश भास्कर० ३ पृ० २०८१-५१। (म०)।

बना कर टालना चाहा और फिर मजबूर होकर कहा कि अब आपने बादशाही खानदान से सम्बन्ध जोड लिये हैं अत मेरा और आपका एक साथ बैठ कर भोजन करना संभव नहीं है।' राजा स्वभाव से न्याय प्रिय था। अत उसने राणा की इस बात का कोई बुरा नहीं माना। राजा ने इसके बाद महाराणा को कहा कि मैं तो आपकी इस बात का बुरा नहीं मानता हू, लेकिन चार दिन बाद जब कभी मेरा पुत्र मानसिंह इधर आ जावेगा, तो उसके सामने आप इस बात को नहीं कहे। वह कब भी इस बात को सहन नहीं करेगा।' यह कह कर राजा वहा से चला गया। चार दिन पश्चात् कु वर मानसिंह वहाँ आया तथा राणा के साथ भोजन करने का हठ करने लगा। उस समय राणा ने यही बात मानसिंह से भी कह दी। फलस्वरूप वह अत्यधिक क्रोधित हुआ और मूछो पर ताव देते हुए वहाँ से चला गया और कुछ समय बाद अकबर बादशाह के किसी समकालीन इतिहास ग्रथ मे नहीं मिलती है। कु वर मानसिंह ने राजा भगवन्तदास के मेवाड जाने से चार वर्ष बाद संवत् १६२३ वि० (१५७६ ई०) मे मेवाड पर चढाई की थी।

संवत् १६३१ वि०[1] मे बादशाह अकबर बिहार विजय करने के लिये गया। वहाँ पटना के पास युद्ध हुआ। इस युद्ध मे राजा भगवन्तदास और कु वर माधोसिंह ने पठानो का वीरता पूर्वक सामना किया और बादशाह से सम्मान प्राप्त किये।

संवत् १६३३ वि० (सन् १५७६ ई०) मे कु वर मानसिंह के बादशाह के आदेश से एक बडी सेना लेकर मेवाड पर चढाई की। राणा प्रतापसिंह से भयकर युद्ध[2] करके उसको हराया और मेवाड के बहुत बडे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। लेकिन कु वर मानसिंह के मेवाड से पलायन के साथ ही राणा ने अपने प्रदेश पर पुन अधिकार करना आरम्भ कर दिया। साथ ही राणा के इशारे पर ईडर के राव नारायणदास ने भी बादशाह से युद्ध करने की तयारी करनी आरम्भ कर दी। यह सुन कर बादशाह अकबर स्वय अजमेर से बडी सेना को लेकर गोगु दा की तरफ रवाना हुआ। इस समय राजा

१ १५७४ ई०।
२ हल्दी घाटी का युद्ध जो सोमवार १८ जून १५७६ के दिन लडा गया था। (स०)।

भगवन्तदास और कुंवर मानसिंह को राणा के पीछे पहाड़ों में भेजा मगर राणा का कोई सुराग नहीं मिल सका। अतः राजा भगवन्तदास और कुंवर मानसिंह पुनः गोगुंदा में लौट आये। तब तक बादशाह अकबर गोगुंदा से मालवा की तरफ रवाना हो चुका था। अतः कुंवर मानसिंह को गोगुंदा में ही छोड़ कर राजा भगवन्तदास स्वयं कुतुबुद्दीन खां के पास चला गया। लेकिन राजा भगवन्तदास के इस प्रकार शाही आज्ञा के बिना राणा की तलाश छोड़ कर आने से बादशाह अकबर उस पर नाराज हो गया। फलस्वरूप बहुत दिनों तक राजा को ड्योढ़ी पर उपस्थित होने की आज्ञा नहीं मिली। कुछ समय बाद राणा के पहाड़ी क्षेत्र से बाहर निकलने की सूचना मिली। तब अकबर बादशाह ने पुनः राजा भगवन्तदास को कासिम खां और मिर्जा खां के साथ राणा के विरुद्ध भेजा। तथा मानसिंह को भी इसी तरह का आदेश दिया गया। दोनों बाप बेटों ने पुनः मेवाड़ी पर्वत-श्रेणी में प्रवेश कर राणा का पीछा किया। एक अवसर ऐसा भी आया जिसमें राणा पकड़ा जा सकता था लेकिन राजा ने इस कृत्य में अपनी बदनामी के भय से भयभीत होकर इस अवसर को टाल दिया। इसके बाद राजा भगवन्तदास ने राणा का ज्यादा पीछा नहीं किया। बादशाह अकबर को इन घटनाओं का पता चलने पर उसने एक नवीन सेना मीर बख्शी शहबाज खां के नेतृत्व में मेवाड़ की तरफ रवाना की। उसने गोगुंदा पहुंच कर राजा भगवन्तदास और कुंवर मानसिंह को बादशाह के दरबार में भेज दिया। अतः ये दोनों पंजाब में रावी नदी के तट पर जहाँ बादशाह का इन दिनों पड़ाव था बादशाह के दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह अकबर ने पठानों का दमन और पहाड़ी प्रदेश की व्यवस्था करने के लिये राजा भगवन्तदास को राजा टोडरमल के साथ पंजाब में ही छोड़ कर स्वयं आगरा चला आया। कुछ समय पश्चात् ये दोनों राजा भी इस अभियान को सफलता पूर्वक निपटा कर बादशाह के दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह इस कृत्य से अति प्रसन्न हुआ तथा कुंवर मानसिंह को स्यालकोट का हाकिम नियुक्त किया। राजा भगवन्तदास को खासा घोड़ा इनाम में दिया। और जगन्नाथ कछवाहा राजा गोपाल और जगमाल पंवार के साथ उसको भी पंजाब के सूबेदार की सहायता के लिये भेजा। साथ ही उसके खानदान का सम्पूर्ण वतन भी उसी सूबे में शामिल कर दिया। लेकिन अजमेर के सूबेदार रुस्तम खां ने कछवाहों की जागीरों में जो अजमेर सूबा के अन्तर्गत थे कुछ हस्तक्षेप किया।

फरत राजा भगवानदास के भतीजे अचलदास सूरदास और तिलोकसी आदि शाही आदेश के बिना ही पंजाब से रवाना होकर अजमेर प्रदेश में गाव वाली जहा दस्तम खा की छावनी थी, पहुँच कर दस्तम खा से छेड़खानी करनी आरम्भ की। दस्तम खा ने इसका पूर्ण विवरण बादशाह को लिखा। इस पर बादशाह ने आदेश दिया कि अगर ये समझने से नहीं मानें तो उन्हें बल पूर्वक निकाल दो। इससे दोनों पक्षों में लड़ाई हो गई। मोहनदास तिलोकसी और सूरदास ने घमासान युद्ध किया और मारे गये। लेकिन अचलदास ने दस्तम खा को बर्छे के वार से गम्भीर रूप में घायल कर दिया। इस अवसर पर दस्तम खा ने भी अचलदास को तलवार से मार गिराया और दूसरे दिन स्वयं भी मर गया। युद्ध में बचे हुए राजपूत वापस पंजाब की तरफ चल गये।

संवत् १६३६ वि०[1] में काबुल में रहने वाले बादशाह के भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम ने कुछ अमीरों के बहकावे में आकर हिंदुस्तान पर चढ़ाई कर दी। उसके शादमा नामक एक गुलाम ने नीलाब के दुर्ग को घेर लिया और रावलपिंडी तक लूटमार करने लगा। इस समय सिंध प्रांत के हाकिम मिर्जा युसुफ से इसका प्रतिकार नहीं हो सका। तब बादशाह ने कुंवर मानसिंह को सिंध प्रांत की सूबेदारी का खिलअत भेजा। अतः मानसिंह स्यालकोट से रवाना हुआ और नीलाब के पास पहुंच कर उसने शादमा से युद्ध किया। युद्ध में शादमा मारा गया। इस घटना से मिर्जा अत्यधिक उत्तेजित हुआ और उसने पंजाब पर चढ़ाई कर दी। बादशाह ने मिर्जा का सामना करने का आदेश नहीं दिया था। इस कारण पंजाब की रक्षा करने वाले सभी कछवाहा सरदार लाहौर के दुर्ग में एकत्रित हो गये और वहाँ मिर्जा द्वारा घेर लिये गये। राजा भगवानदास ने शहर का अच्छा प्रबंध किया। जब तक मिर्जा लाहौर घेरे रहा उस समय तक राजा ने किसी भी मौसवी को एक दूसरे से नहीं मिलने दिया। क्योंकि मिर्जा ने आक्रमण भी इन्हीं मौलवियों के बहकावे के कारण किया था। कुछ दिनों पश्चात् जब बादशाह अकबर के आगमन की खबर फैली, तो मिर्जा ने लाहौर का घेरा उठा लिया और काबुल की तरफ भाग गया। बादशाह ने लाहौर पहुँच कर राजा भगवानदास को तो शिकार मना और शाही हरम की रक्षा के लिये

---

१ १५८० ई०।

वही छोड कर कु वर मानसिंह को मिर्जा के पीछे भेजा। उसने मिर्जा और उसकी सेना स घाटी म भयानक युद्ध किया। इसके पश्चात् बादशाह ने अपन भाई के गुनाहो को माफ कर दिया। कु वर मानसिंह को लौट आने का आदेश दे दिया। अत वह घाटी स लौट कर पुन सिंध चला गया।

सवत् १६३९ वि०[1] म बादशाह अकबर ने पजाब सूबे की सूबेदारी और सिपहसालारी राजा भगवन्तदास को प्रदान की। ये दोनो पद अति महत्त्व के थ। इस सामान्त प्रान्त क कारण उनका उत्तरदायित्व भी बहुत था। अब तक इन पदो पर अलग-अलग दो बडे बडे अमीर नियुक्त किय जाते थ। लेकिन बादशाह न राजा भगवन्तदास की योग्यता बहादुरी और काय कुशलता स प्रभावित होकर सोचा कि इन दोनो पदो का काय यह राजा अकेला ही सफलता पूवक निभा लेगा। इसी कारण तत्कालीन पजाब क सूबेदार सईद खा को पजाब से हटा कर उसको सम्भल म अलग जागीर दे दी और यहा क दोनो पद राजा को सौंप दिय।

सवत् १६४१ वि०[2] मे बादशाह का चाचा मिर्जा शाह रुख तूरान क बादशाह अब्दुल्ला खा से युद्ध हार कर बदख्शा स भाग कर हिंदुस्तान म आया। सिंध म कु वर मानसिंह ने और पजाब म राजा भगवन्तदास न उसकी अगवानी कर आतिथ्य किया। भगवन्तदास उसको बादशाह के पास भी ले गया। बादशाह न राजा की सेवाओ से प्रसन्न होकर उसका मनसब पाच हजारी कर दिया जो उस समय बहुत बडा मनसब माना जाता था।

सवत् १६४२ वि०[3] म बादशाह का भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम मर गया। फलत काबुल म अव्यवस्था फल गई। बादशाह ने कु वर मानसिंह को काबुल का सूबेदार बना कर भेजा। वह शीघ्र ही काबुल म व्यवस्था स्थापित करके पुन बादशाह के पास रावलपिंडी लौट आया। वहाँ स बादशाह न कश्मीर विजय के लिये एक सना भेजी जिसम राजा भगवन्तदास और कु वर माधोसिंह भी सम्मिलित थे।

---

१ १५८३ ई०।
२ १५८४ ई०।
३ १५८५ ई०।

इसी समय पठानों का उपद्रव आरम्भ हो गया। एक तरफ जहाँ मानसिंह ने पठानों को पराजित कर दिया तो दूसरी तरफ पठानों ने बादशाही सेना को नष्ट कर बादशाह के प्रसिद्ध मुसाहिब राजा बीरबल को मार डाला। बीरबल की मृत्यु का बादशाह को बहुत दुःख हुआ और उसने कुंवर मानसिंह और राजा टोडरमल वजीर को पठानों को मारने का आदेश दिया। आज्ञा मिलते पर दोनों ने जाकर तुरंत पठानों को दोनों तरफ से घेर लिया। संवत् १६४३ वि०[1] में उन्होंने हजारों पठानों को मार कर सुवात और बुनेर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। जब पठानों से युद्ध चल रहा था, उस समय एक दिन बादशाह अकबर ने राजा भगवन्तदास को गजनी आदि की सुरक्षा हेतु भेजने की इच्छा प्रकट की। किन्तु राजा भगवन्तदास ने इस प्रस्ताव पर आपत्ति उठाई तो बादशाह ने राजा पर नाराज होकर अपने पुत्र सुलतान दानियाल को गजनी की सुरक्षा हेतु भेजने का आदेश दिया। इससे राजा भगवन्तदास अत्यधिक शर्मिंदा हुआ। उसने बादशाह से माफी मांगी और सिन्धु नदी को पार कर सेना की भरती करने के उद्देश्य से कुछ समय तक खैराबाद की सराय में अपना पड़ाव डाला। अभी पूरी सेना एकत्रित भी नहीं हो पायी थी कि राजा भगवन्तदास को जनून (पागलपन) की बीमारी हो गई। तब उसके लोग उसको अटक बनारस ले गये। वहाँ पर सामान नामक एक हकीम उसका इलाज करने लगा। एक दिन जब हकीम राजा की नब्ज देख रहा था कि राजा ने उस हकीम की कमर से जमधर निकाल कर अपने बदन पर मार लिया।

बादशाह अकबर को जब राजा भगवन्तदास के इस प्रकार पागल हो जाने की सूचना मिली तो उसने हकीम हमाम और वैद्य महादेव को भेजा, और कहा कि जिस व्यक्ति पर राजा के सलाहकारों का विश्वास हो, उससे राजा का इलाज करावें। राजा के लोगों ने वैद्य महादेव का चुनाव किया। और उसके इलाज से कुछ ही दिनों में राजा ठीक हो गया। ऐसा कहा जाता है कि राजा भगवन्तदास के खानदान में इस प्रकार पागल हो जाने की बीमारी बहुत पहले से ही चली आ रही थी। राजा के भाई-बेटों को भी प्रायः यह बीमारी हो जाया करती थी। संभवतः उन सबने बीमारी का एक बहाना बना रखा था और इसमें भी कोई चाल थी। क्योंकि

[1] १५८६ ई.।

आम्बेर के राजा बहुत चालाक और होशियार होते थे। अतः क्या आश्चर्य है! जब राजा की इच्छा गजनी की तरफ जाने की नहीं थी तो उसने यह बनावटी बीमारी का ढोंग खड़ा कर दिया हो। लेकिन बादशाह भी चतुर था। उसने पिता के स्थान पर पुत्र से कार्य करवाया और राजा के लौट आने पर कुंवर मानसिंह को अफगानिस्तान से काबुलिस्तान (गजनी वगैरह) में भिजवाया और राजा के स्थान पर एक दूसरे सरदार इस्माईल अली खां को नियुक्त किया। लेकिन उसके पास कुंवर माधोसिंह और राजा भगवन्तदास की सेना ही रखी। संवत् १६४४ वि०[1] तक कुंवर मानसिंह ने अनेकों युद्धों में पठानों को परास्त किया, किन्तु वहाँ पर राजपूतों द्वारा अत्याचार किये जाने पर इसी वर्ष कुंवर मानसिंह को काबुलिस्तान से हटा दिया गया।

अफगानिस्तान अभियान समाप्त हो जाने पर बादशाह अकबर ने कुंवर मानसिंह को बिहार की सूबेदारी प्रदान की। सभी कछवाहा सरदारों को भी कुंवर की सहायता के लिये बिहार में जागीरें प्रदान कर उन्हें बिहार भेज दिये। बादशाह अकबर ने यह व्यवस्था इस उद्देश्य से की थी कि वह पंजाब के समान ही उस सूबे में भी राजपूतों की शक्ति जमा कर उड़ीसा के क्षेत्र के पठानों को भी दबा दें और उन पर आधिपत्य स्थापित करें। साथ ही उन लोगों को अपने सामान और असबाब की तरफ से निश्चिंत रहने के लिये रोहतास का किला भी खाली करवा कर सं० १६४५ वि० (सन् १५८८ ई०) में राजा भगवन्तदास के कर्मचारियों को सौंप दिया गया। राजा भगवन्तदास को भी इसी समय बादशाह के महलों की देख रेख पर नियुक्त किया गया जो एक महत्त्वपूर्ण सेवा थी।

इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्था हो जाने के बाद बादशाह अकबर कश्मीर की यात्रा के लिये रवाना हुआ। राजा भगवन्तदास और राजा टोडरमल को लाहौर में ही ठहरने का आदेश दिया। देवयोग से कार्तिक सुदि १३ संवत् १६४६ वि०[2] के दिन राजा टोडरमल लाहौर में मर गया। राजा भगवन्तदास जब उसका अंतिम संस्कार करके पुनः निवास स्थान पर

---

१ १५८७ ई०।

२ बुधवार, नवम्बर १० १५८९ ई०।

आया तो उसको भी एक फोड़ा हुआ और उसका मूत्र बन्द हो गया, जिससे केवल पांच दिन पश्चात् ही मार्गशीर्ष कृष्णा ३ १६४६ वि०[1] के दिन राजा भगवन्तदास का भी स्वर्गवास हो गया।

इन दोनों बादशाही स्तम्भों के टूट जाने से अकबर बादशाह को अत्यधिक दुःख हुआ। उसने बादशाही दरबार में राजा भगवन्तदास के स्थान पर कुंवर माधोसिंह को नियुक्त किया तथा राजा का खिताब और फरमान बिहार में कुंवर मानसिंह के पास भेजा।

राजा भगवन्तदास बहादुर होने के साथ ही साथ बुद्धिमान और मेहनती भी था। इसी कारण से बादशाह अकबर ने उसको कई युद्धों का संचालन और सूबों के प्रशासन का काम सौंपा था। वह प्रत्येक काम को तन मन से करता था। फलतः शाही दरबार में उसकी इज्जत और मर्यादा बढ़ती रही। उसकी जाति के अन्य लोगों और उसकी सन्तान से बादशाह अकबर को अत्यधिक लाभ हुआ।

शाही सेवा में आने के बाद राजा भगवन्तदास कभी भी निठल्ला नहीं बैठा रहा। शाही दरबार का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य राजा या उसके भाई बेटों के सहयोग के बिना नहीं होता था। इन्हीं शाही कार्यों के कारण राजा ने अपनी जाति और अपने राज्य का नाम सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध किया जिसका वर्णन ऐतिहासिक ग्रन्थों में आज भी उपलब्ध है।

बादशाह से वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने के कारण राजा भगवन्तदास पद और धन-दौलत के क्षेत्र में अन्य राजाओं से बहुत आगे बढ़ गया था। लेकिन धन दौलत की प्राप्ति अथवा बादशाह के साथ रहने से उसके धर्म-कर्म पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। शाही दरबार और एकान्त में अन्य राजाओं और अमीरों की अपेक्षा राजा भगवन्तदास बादशाह के साथ ज्यादा बैठता था। किन्तु राजा पर बादशाह की डांवाडोल धार्मिक नीति का कोई असर नहीं हुआ। अकबर बादशाह ने नवीन धर्म सम्प्रदाय (दीन-इ-इलाही) चलाया तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों को इस नवीन सम्प्रदाय में लाना चाहता था। एक दिन रात बादशाह अपने मरदाने में इस नवीन सम्प्रदाय के

[1] सोमवार नवम्बर १४ १५८९ ई०।

विषय म बातचीत करता रहता था। बादशाह ने एक दिन राजा भगवन्त-दास से भी इसी सम्बन्ध म चर्चा की। तब राजा ने स्पष्ट उत्तर दिया कि शहशाह जब हिन्दू बुरे है और मुसलमानो को भी अच्छा नहीं बताया है तब मुझे यह बताया जाय कि तीसरा धर्म कौन सा है। बादशाह राजा का यह स्पष्ट उत्तर सुन कर चुप हो गया और फिर कब भी इस सम्बन्ध म राजा से पुन बात चीत नही की।

राजा भगवन्तदास को इमारतें बनवाने का बहुत शौक था। उसने अपने राज्य की सीमा के अन्तगत भगवतगढ नामक एक दुर्ग बनवाया जो आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त उसने आम्बेर आगरा और फतहपुर सीकरी तथा लाहौर म भी अन्य महल आदि बनवाय। उन म से लाहौर के महल और अपने (राजा) भाई-बेटो और मुख्य सेवको के रहने के लिये इतने अनोखे और विशाल महल बनवाये जिनम बादशाह अकबर स्वय यदा कदा ठहर जाता था।

राजा भगवन्तदास के १३ रानियाँ और ९ पुत्र थ। पुत्रो के नाम निम्न है —

१ मानसिंह का पौष कृष्णा १३ सवत् १६०७ वि०[1] को जन्म हुआ।

२ माधोसिंह आसाढ सुदी ५ सवत १६१० वि० को पैदा हुआ। बादशाह अकबर ने कुवर माधोसिंह को अजमेर सूबे म मानपुरा की जागीर प्रदान की। यह कुवर एक समय तक शाही दरबार म सलाहकार बना रहा और इसने अनेक युद्धो म भी भाग लिया अन्त म वह आम्बेर की एक पार के झरोखे से नीचे गिर कर मर गया।

३ सूरसिंह बहुत बहादुर था।
४ कानसिंह बहुत बहादुर था।
५ प्रतापसिंह बहुत बहादुर था।
६ पृथ्वीसिंह बहुत बहादुर था।
७ किशनसिंह बहुत बहादुर था।
८ जेतसिंह बहुत बहादुर था।
९ चन्द्रभान। बहुत बहादुर था।

---

१ शनिवार दिसम्बर ६ १५५० ई०।
२ शुक्रवार जून १६ १५५३ ई०।

भाम और हरदाम दोना राजा भगवन्तदास की उप पत्निया की सन्तान थ।

इन राजकुमारा म प्रथम पाच राजकुमार सग भाई थे। तथा इनकी मा पचायन पवार का बेटी और राजा करमचद की पोती थी। यह करमचन्द उदार चित्त और दानी सरदार था। करमचद राणा सग्रामसिंह की तरफ से अजमेर का अधिकारी नियुक्त किया गया था। यह बादशाह अकबर म पचास वष पहले की घटना थी।

अब हम (दवी प्रसाद) राजा भगवतदास के इस जीवन चरित्र को उसके छोट कु वर सूरसिंह के इतिहास पर समाप्त करत हैं—

कु वर सूरसिह—

'सिपाही स्वय ही एक किला है जो हर समय बादशाह की जान और माल आदि का रक्षा करता है और बादशाह उस सिपाही का हटा कर उसके स्थान पर ईट व पत्थर रखवाता है यह उचित नही है। इस पर बादशाह न कहा कि दुर्ग सिपाही की और सिपाही दुर्ग की रक्षा करते है। अत इन दोनो का रहना जरूरी है। इस कारण तुम अपना पडाव हटा कर दूसरे स्थान पर लगा दो। सूरसिंह ने फिर निवेदन किया कि अगर बादशाह की यही इच्छा है तो मेरे पडाव की हद तक कोट की दीवार छोड दी जाय। इस तरफ की सुरक्षा का उत्तरदायित्व मैं ग्रहण करता हू। कु वर का ऐसा निर्भीक उत्तर सुन कर बादशाह को आश्चय हुआ तथा कहा कि इस राजपूत की इतनी हिम्मत कि उसने मेरे दो आदेशो की अवहेलना कर दी। और अगर इसने तीसरा आदेश भी नही माना तो उसे निश्चित ही सजा देनी पडेगा। किन्तु ऐसे निडर और शूरवीर का कोई अहित करना भी उचित नही है। अत जैसा वह कहता है वैसा ही करो। यह सुन कर बादशाह के सभी दरबारी अमीरो ने निवेदन किया कि 'ऐसे विद्रोही प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को तोप से उडा देना चाहिये जिससे दूसरे व्यक्ति भी शाही आदेशो की अवहेलना करने से डर जावे। इस पर बादशाह ने कहा कि ऐसे शूरवीर सैनिक को व्यर्थ ही नही मारना चाहिये। ऐसा सैनिक किसी कठिन समय में काम आवेगा। और बादशाह ने कु वर के पडाव को छोड कर ही दुर्ग की चार दीवारी बनवाई। इससे यह बात प्रसिद्ध हो गई कि शूरवीर सूरसिंह ने आगरे के दुर्ग को टेढा करा दिया।

इसी तरह से जब एक दिन कु वर सूरसिंह बादशाह की सेवा में जा रहा था तो मार्ग मे एक मद मस्त हाथी राह रोके खडा था। लोग उससे भयभीत हो कर दूर-दूर भाग रहे थे। सूरसिंह को भी उन लोगो ने उधर जाने से रोका। लेकिन कु वर सूरसिंह ने इसकी परवाह न करते हुए अपना भाला हाथी के सिर में इतने जोर से मारा कि सारा भाला उसके सिर में समा गया। हाथी मर गया। अत महावत सूरसिंह को बादशाह के पास ले गया। बादशाह को मद मस्त हाथियो को रखने का शौक था। अत वह सूरसिंह से नाराज हो गया। इस पर सूरसिंह ने निवेदन किया कि मेरा यह नियम है कि मैं बादशाह के दर्शन किये बिना खाना नही खाता हू। मैं बादशाह का नमक खाता हू और वह तुच्छ हाथी केवल घास खाता है। अगर मैं इससे भयभीत होकर बादशाह के दर्शन करने छोड देता तो युद्ध में भी कौनसी बहादुरी

लिया सकता था। जब बादशाह स्वयं न्याय करें। कुंवर का यह तर्क सुन कर बादशाह ने कहा कि मैंने तुम्हारा कसूर माफ कर दिया। तुम वीर योद्धा हो। इसके साथ ही बादशाह ने कुंवर सूरसिंह को सोने के साज सहित एक हाथी और बड़ा मनसब प्रदान किया।

इसी सूरसिंह ने मिर्जा हकीम की सेना से युद्ध करते समय अपने बड़े भाई मानसिंह के साथ नीलाब नदी के पर तट बड़ी शूर वीरता दिखाई और मिर्जा का विश्वस्त गुलाम शादमा भी इसकी तलवार से मारा गया था।

(५) राजा मानसिह कछवाहा, आम्बेर

महाराजा मानसिह आम्बर क राजाओ म बडा प्रतापी और साहसी नरेश हुआ था। वह राजा भगवतदास का पुत्र और राजा भारमल का पौत्र था। मानसिह क जन्म के समय ज्योतिष शास्त्र क आधार पर ज्योतिषियो ने राजा भारमल स कहा महाराज आपका पोता शुभ घडी म पदा हुआ है, इनका राज्य एव यश सवत्र फलेगा लकिन आप १२ वष तक इन्ह अलग रखें।

राजा भारमल न यह सुन कर मानसिह को साभर क्षेत्र क कसबा मुअज्जमाबाद म भेज दिया और १०० लडक अपने खानदान क भी साथ दिय। और मानसिह के पालन पोषण के लिय भी वहा सारी व्यवस्था कर दी।

महाराजा मानसिंह उसी जगह बड़ा हुआ और बहादुरी दातारगी और सिपाहगिरी में उसकी प्रशंसा होने लगी। उसके गुणों की प्रशंसा सुन कर अकबर बादशाह भी मानसिंह को देखने के लिये उत्सुक हुआ। उस समय किसी राजा ने दिल्लगी से अर्ज की कि, 'हां बेशक वह देखने के ही लायक है'। सम्वत् १६१७ (१५६१ ई०) में बादशाह आगरा से अजमेर जाते हुए मार्ग में साभर में ठहरा वहां राजा भारमल उससे सलाम करने गया, तब मानसिंह भी उसके साथ था। बादशाह उसकी सूरत देख कर मुस्कराया क्योंकि उसका रंग श्याम बदन मोटा और बेडौल सा था और हंसी से पूछा कि 'मानसिंह जब खुदा के यहां नूर बटता था तब क्या तुम हाजिर नहीं हुए थे?' मानसिंह ने अर्ज की कि 'नूर बटा उस वक्त तो मैं खुदा की इबादत में था परन्तु जब दातारगी और बहादुरी बट रही थी तब मैं नूर के बदले भी इन्हीं दोनों चीजों को माग लाया सो मागने वाले को जवाब और दुश्मन को पीठ कभी नहीं देता हूं।'

बादशाह यह निर्भीक उत्तर सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि 'मानसिंह तुमको तो खुदा ने मेरे दुश्मनों को मारने के लिये पैदा किया है तुम मेरे साथ चलो।' यह कह कर मानसिंह को अपने साथ ले गया और इस बारह वर्ष तक अपने पास रख कर अच्छा प्रशिक्षण दिया।

सवत १६२९ (१५७२ ई०) में[1] बादशाह गुजरात फतह करने गया। उस समय मानसिंह भी साथ था। उसको वहां से मेवाड़ की तरफ भेजा। वह डूंगरपुर के रावल (आसकरण) को आधीन[2] करके गांव गोगुंदा[3] में राणा प्रताप से मिला[4]। बाद में बादशाह ने उसको खीचीवाड़ा[5] का हाकिम बना कर वहां भेज दिया और ४ वर्ष तक वह उस क्षेत्र में रहा।

---

१ जुलाई ४ १५७२ ई० को फतहपुर सीकरी से प्रस्थान किया (स०)।

२ अप्रेल १५७३ ई०।

३ 'उदयपुर' होना चाहिये। (स०)।

४ मानसिंह के स्वागत में उदयसागर की पाल पर दोपहर के भोजन का आयोजन किया गया था। यहीं पर मानसिंह और प्रताप के मध्य मनमुटाव हो गया था। (स०)।

५ डा० राजाव नारायण प्रसाद (राजा मानसिंह आफ आम्बेर पृ० ५४-५५) के अनुसार कुंवर मानसिंह को हल्दी घाटी युद्ध के बाद ही खीचीवाड़ा भेजा गया था। (स०)।

सवत् १६३३ (१५७६ ई०) म बादशाह न अजमेर म मानसिंह को बड़ी फौज का अफसर बनाकर ५००० सवारो के साथ राणा प्रताप के विरुद्ध भेजा। मानसिंह ने उदयपुर के पास एक बड़ी भारी लड़ाई लड़ कर राणा को हरा दिया[1] और फतहमदी के साथ आगरा म जाकर बादशाह से मुजरा किया। बादशाह ने प्रसन्न होकर स्यालकोट का हाकिम बना कर वहा भेज दिया और उसके पिता राजा भगवतदास को मय कछवाहा राजपूतो के साथ पजाब के सूबेदार की मदद के वास्ते भेजा। उस वक्त बहुत से मुसलमान अमीर बादशाह से नाराज हो रहे थे और उन्होने बादशाह के भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम को काबुल से बुला कर फसाद उठाया। बादशाह न शीघ्र ही सिंध के सूबेदार को दूर करके मानसिंह को उसकी जगह नियुक्त किया। मानसिंह ने स्यालकोट से सिंध म जाकर मिर्जा को सिंध पजाब से भगा दिया और काबुल तक उसका पीछा किया। अफगानिस्तान म काबुलियो और राजपूतो के बीच कई बार लड़ाइया हुई जिनमे राजपूतो की विजय हुई। अत म बादशाह न अपने भाई का अपराध क्षमा कर दिया और मानसिंह सिंध चला गया। बादशाह न उसकी इस सेवा से खुश होकर पजाब की सूबेदारी और सिपह सालारी उसके पिता राजा भगवतदास को इनायत की।

सवत १६४१ (१५८५ ई०) म मिर्जा मुहम्मद हकीम मर गया। उसकी बहुतसी फौज तूरान के बादशाह अब्दुल्ला खाँ उजबक से जा मिली जो काबुल पर हमला करने के लिये प्रयत्नशील रहा करता था। बादशाह ने अविलम्ब मानसिंह को काबुल की सूबेदारी देकर वहा पहुचने का आदेश दिया।

मानसिंह सिंध से काबुल गया और पाच वर्ष तक वहा रहा। वहा के निवास काल म उसने युसुफजई महमद व गजनाखेल वगैरह पठानो से बहुत सी लड़ाइया लड़ी जिनमे हमेशा उसकी फतह होती रही।

जब काबुल के सूबे म अच्छी तरह से अमन (आधिपत्य) जम गया तब बादशाह ने मानसिंह को बिहार की सूबेदारी पर इस उद्देश्य से भेजा

१ उक्त लड़ाई खमनोर के पास हल्दाघाटी के उत्तरी सिरे पर लगे हुए रक्त तलाई मैदान म जून १८, १५७६ ई० को हुई थी जो इतिहास म हल्दीघाटी के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। (स०)।

२ १५८७ ई० म बिहार भेजा गया था। (स०)।

कि बगाल और उडीसा सूबा के पठानो को पराजित करके उन्हे बादशाह की अमलदारी में शामिल करें।

मानसिंह को बिहार में पहुंचे अभी थोडे ही दिन हुए थे, कि उसके पिता राजा भगवतदास का लाहौर में देहान्त हो गया। यह खबर सुन कर मानसिंह माघ बदि ५ १६४६ वि०[1] को पटना में बडी धूमधाम से कछवाहो की गद्दी पर बैठा। बादशाह ने उसको पाच हजारी मनसब और राजा का खिताब प्रदान किया।

मानसिंह ने पाच वर्ष तक पठानो से बडी बडी लडाइया लड कर बगाल और उडीसा के दोनो सूबे पूर्णतया उन से छीन लिये। उसके बाद भी पाच वर्ष और वहा रह कर उनकी लूटमार को समाप्त कर शाति की स्थापना की।

सम्वत् १६५८ (१६०२ ई०) में राजा कंवार को और सम्वत् १६६० (१६०३ ई०) में ब्रह्मा (माघ) के बादशाह (जमींदार) को जो पठानो के साथ मिल कर बगाल के ऊपर चढाई करना चाहते थे सीमा पर जाकर पराजित किया। इन विजयो से मानसिंह की धाक सम्पूर्ण क्षेत्र में जम गई। पठान सब भाग गये और उनका विद्रोह समाप्त हो गया।

जब बादशाह को हिन्दुस्तान के इतजाम से दिल जमई हुई तो तूरान के ऊपर सैनिक अभियान प्रारभ करने का विचार करके मानसिंह को अपने पास बुलाया। उसको सात हजारी जात और ६००० सवार का मनसब देकर अपने पोते खुसरो का अतालीक (सरक्षक) भी नियुक्त किया। इस समय मानसिंह सल्तनत में बहुत अधिक प्रभावशाली हो गया था और सभी कार्यों में उसकी राय ली जाती थी।

कार्तिक सुदी १४ १६६२ वि०[2] को अकबर बादशाह की मृत्यु हो गया। वह अपने पुत्र सलीम से नाराज रहा करता था इसलिये मानसिंह और खान आजम मिर्जा कोका ने चाहा कि उसके बदले खुसरो को गद्दी

१ गुरुवार जनवरी १५ १५९० ई०।

२ मगलवार अक्तूबर १५ १६०५ ई०।

पर उठाव । परतु खुमरो की नालायकी म उनका यह इरादा पूरा नहीं हुआ और शाहजादा सलाम ने सिंहासन पर बठ कर मानसिंह को उस समय तो ममलिहत देख कर बगाल के सूबे पर भेज दिया। परतु दूसरे ही वष मवत् १६६४ (१६०७ ई०)[1] म बगाल कुतुबुद्दीन खा को प्रदान कर दिया गया।

मानसिंह नये सूबेदार का काय-भार सौप कर कुछ समय तक रोहतास के किले म रहा जहा उसका परिवार था। कुछ समय बाद आगरा आकर बादशाह स मिला और वतन जाने की सीख मागी। बादशाह ने स्वीकृति दकर कहा कि जब वतन के कार्यों से अवकाश मिल जावे तो दक्षिण चले जाना।

मानसिंह बडी धमधाम स आम्बेर आया (१६०७ ई० म) और एक-दो वष तक वहा रहा। फिर खानखाना की मदद के लिये दक्षिण गया। परतु बादशाह दिल से इन दोनो म ही नाराज थे इसलिये कोई बडा काम इनके हाथों से नही हो पाया।

उस समय दिल्ली का राज्याधिकार दक्षिण म बराड से आगे नही था। उस वक्त उनसे बढ कर हिन्दुओ और मुसलमानो म तीसरा कोई सरदार नही था, अत अगर जहागीर बादशाह इन दोनो सरदारो को प्रसन्न रखता तो बहुत जल्दी उसका राज्याधिकार समुद्र के किनारे तक पहुच जाता। लेकिन दोनो ओर विश्वास नही होने के कारण दक्षिण की मुहिम का काम टलता ही गया और कोई लाभ नही मिला।

राजा मानसिंह प्राय खेद के साथ कहा करता था कि मैं ११ वष की उम्र म ही प्रत्यक्ष लडाई म आगे होकर लडता रहा हू और जिन मुल्को के नाम कभी सुने भी नही थे उनको जाकर मैंने फतह किया। और जगह जगह बादशाही अमल जमाया। परतु बादशाह ऐसा नाकदरदान है कि इस पर भी उस का विश्वास नही है। आज एक के और कल दूसरे के आधीन होकर काम करने की लिखता है सो हम किसी के आधीन होकर काम नही करेंगे।

---

[1] जहागीर के गद्दी पर बठने के छ महीने बाद ही राजा मानसिंह को बगाल से दूर कर दिया गया था। (राजीव नारायण प्रसाद राजा मानसिंह आफ आम्बर पृ० १२१ १२२)। (स०)।

उक्त बाला का सदमा वृद्धावस्था के साथ दिन दिन उसके दिल और दिमाग के ऊपर बढ़ता गया और अंत में उसी के परिणाम स्वरूप एलिचपुर में उसका निधन हो गया, जिसकी सूचना जहांगीर को श्रावण वदि ७, १६७१ वि०[1] को मिली।

मानसिंह का निधन ७० वर्ष की अवस्था में हुआ था। करीब २४ वर्ष राज्य किया, और ५५ वर्ष तक शाही सेवा की। इस काल में ईरान-तूरान की सीमा से लेकर ब्रह्मा की सीमा तक और पूर्व से पश्चिम तक २००० कोस की दूरी होगी, बड़े जोर शोर से तलवारें चलाई और प्रत्येक लड़ाई में विजय प्राप्त की। हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े प्रदेशों में अनेक वर्षों तक अपने इख्तियार से हुकूमत की और यही कारण है कि आज तक हिन्दुस्तान और काबुल में हर जगह उसका नाम प्रसिद्ध है।

राजा मानसिंह के २२ रानियां थीं। जो मारवाड़, मालवा, हाड़ोती, भाटावाट, सिरोही, बंगाल, कूचबिहार, ऊमटवाड़ा, खीचीवाड़ा, बुन्देलखंड और बघेलखंड के राजाओं की पुत्रियां थीं। जब ये सब एकत्रित होकर अपनी-अपनी बोलियां बोलती होंगी तो वही स्थिति होती होगी जो एक बाग में तरह तरह के जानवरों के बोलने से होती है।

२२ रानियों में से ? महाराजा मानसिंह के साथ और पांच आम्बेर में सती हुईं, शेष अपनी मौत से मरीं।

आम्बेर और रोहतास वगैरह में मानसिंह के बनाये हुए अच्छे अच्छे महल, मकान और बाग अब तक विद्यमान हैं। उसकी दानशीलता की आश्चर्यजनक बातें सुनने में आती हैं। उसका हाथ बचपन से ही खुला हुआ था। उसका पहला विवाह अजमेर के गौड़ राजा की बेटी से हुआ था। वह राजा भी बड़ा दानी था। एक दिन उसने किसी चारण की कविता से खुश होकर बहुत इनाम दिया जिससे सम्पूर्ण राजपूताने में उसका नाम हो गया।

---

१ जुलाई १८ १६१४ ई०। वंशावली० के अनुसार राजा मानसिंह का देहान्त आषाढ़ सुदी १० १६७१ वि० (जुलाई ६, १६१४ ई०) को हुआ था। (स०)।

ा न यह खबर सुन कर अपने महल म बडी खुशी की और मानसिंह
र वह सब हाल बडी शेखी से अर्ज किया। मानसिंह ने कहा
बात है। राजा लाग दान देत ही रहते हैं। रानी ने अर्ज का
ाज कहने और दन म बडा फर्क है। महाराजा उस वक्त तो चुप
सुबह ही सात कवीश्वरा को बुला कर जितना इनाम उसके श्वसुर
ण को दिया था उतना उसने उन साता म स एक एक का
ा।

र कवीश्वर न किसी आदमी स १०००) रुपया लेकर महाराजा
डी लिख दा। जब वह उसको लेकर महाराजा क पास आया ता
न अविलम्ब उसका रुपया चुका दिया और हुडी का पीठ पर उस
ो निम्नलिखित दाहा लिख भजा—

दोहा

इते हम महाराज हैं उत आप कविराज॥
हुडी लिखत हजार की नेक न आई लाज॥१॥

सी तरह हरनाथ कवीश्वर न महाराजा का प्रशसा म निम्न दाहा
नाया—

दोहा

बल बाई कीरत लता करण करी द्वै पात॥
सींची मान महीप न जब देखी कुमिलात॥२॥

ानसिंह ने उसको रु० १,००,००० इनायत किये और ऐसी रमा
हुत सी भेंटें दी, जिससे उसका नाम हिदुस्तान क मुक्तहस्त दातार
ी सूची म सम्मिलित कर लिया गया।

१ ददेवा[1] पर चढ़ाई—

स १००० वि० (९४३ ई०) के करीब इस मम्पूण जागल प्रन्श म चौहान राज्य करत थे। गागा चौहान जा वहादुरी क लिये प्रसिद्ध हो गया था इन्हा चौहाना म से था। फिर उनका राज्य कम हाता गया और ददेवा कसबा, जो बीकानेर से ७० कोस उत्तर की तरफ है तक हा सीमित रह गया। सवत् १४०० वि० (१३४३ ई०) क प्रारम्भ म ददेवा का राजा मोटोराय चौहान था। उसका पुत्र करमसी था। वह १४४० वि० (१३८७ ई०) म सुलतान फिराजशाह तुगलक के एक अमीर सयद नासिर क पास रह कर मुसलमान बन गया था। तब उसका नाम क्याम खा रखा गया था। वह वडा बहादुर और प्रतापी हुआ था और उसन हासी हिसार म वडा राज्य प्राप्त किया था। बाद म उसके बेटे पोते फतहपुर झुंझनू चल गय थे और वहा बहुत दिना तक उनका राज्य रहा था। क्यामखानी जा आज राजपूताना म एक प्रसिद्ध जाति है वह इसी क्याम खा चौहान क वश से है। उसके भाई जा हिन्दू ही बन रहे थे ददेवा के स्वामी थे। जब उस प्रन्श पर बीका का अधिकार हो गया तो व उसकी सेवा करन लगे। परन्तु लूणकरण न उनका दण्ड दने का तयारी की और इसक लिय २० ००० सनिक एकत्रित किय। उसके बाद आसाज सुदि १० १५६६ वि०[2] का ददेवा के ऊपर कूच किया। वद मेहता भललाला क पुत्र और अन्य व्यक्तियों को किले म रखा और तब निम्नलिखित सरदार राव क साथ थ—

१ भाई घडसी ठिकाणा गारबा,
२ भाई राजसी,
३ भाई मेघराज
४ भाई केलण,
५ भाई देवसी
६ विजयराज
७ अमरसी,
८ भाई वेसा,
९ बीदावत ससारचन्द पडिहारा की

१ ददवा अब बीकानेर के परगना राजगढ म स्थित है। (स्वा०)।
२ रविवार सितम्बर २३ १५०९ ई०।

१० बीदावत उदयकरण द्रोणपुर,
११ रावत राजसिंह राजासर का,
१२ ठाकुर वगीर बाघावत चाचावाद का,
१३ ठाकुर अरडकमल कांधलोत साहवा का
१४ ठाकुर महेशदास मडनावत मामडा का
१५ राव हरा सखावत पूगल का,
१६ मनिक का पुत्र जोहिया तिहुनपाल, मिहान का,
१७ ठाकुर बाघ सखावत रायमलवाली का
१८ पड़िहार गिरधर वेलावत वेलासर का और
१९ वच्छावत नगराज वरसिंहोत ।

राव (लूणकरण) ने ददरेवा पहुँच कर दुर्ग को घेर लिया। चौहान मानसिंह देपालात ने किले के द्वार बंद कर लिये। सात महिना तक गालियो[1] की लड़ाई चलती रही। राव की सेना ने किले में रसद पहुँचने नहीं दी। इस कारण अंत में मानसिंह को किले के द्वार खोलने पड़े। अपने ५०० व्यक्तियों के साथ बाहर आकर मानसिंह ने युद्ध किया और राव के भाई घड़सी के हाथ से वह मारा गया। इस युद्ध में ३०० चौहान और १३७ सैनिक राव (लूणकरण) के काम आये। ददरेवा पर राव का अधिकार हो गया। राव ने वहाँ अपना थाना बैठा दिया और पुनः बीकानेर लौट गया।

फतहपुर के नवाब पर फतह—

उन दिनों फतहपुर पर दौलत खाँ कायमखानी का अधिकार था। उसका रंग खाँ से जमीन का झगड़ा था। राव ने इस अवसर का लाभ उठा कर वैशाख सुदि ७, १५६८ वि०[2] को फतहपुर पर चढ़ाई कर दी। दौलत खाँ और रंग खाँ दोनों मिल कर मुकाबला करने के लिये फतहपुर से एक कोस आगे आ गये। तलवारों की लड़ाई के समय ये पुनः शहर में भाग गये। राव (लूणकरण) की सेना ने उनका पीछा किया। तब उन्होंने

१ उस समय तक उत्तरी भारत में बारूद और तोप-बन्दूकों का प्रयोग नहीं होने लगा था। (स०)।
२ गुरुवार अप्रैल २२ १५१२ ई०।

(मफद) चादर उडा कर समभौत के लिये अपने भले आदमी भेजे। रावन ने भा उनसे समभौता कर लिया। तदनुसार फतहपुर के १२० गाव राव नूगकरण को दिय गय। राव ने उनम अपने थान वठा दिये और बीकानर लौट आया।[1]

चायलवाडे की फतह—

राव लूणकरण ने चायलवाडे के ऊपर कूच किया क्याकि चायल *विरोधी हो गय थ। वहा क भामिया न जब राव की मेना के आन के* समाचार सुने तो भटनेर चला गया। चायनवाडे के ४४० गावो पर जो हिरदेसर साहवा और बागडयो के बीच थ राव का अधिकार हो गया। राव ने वहा पर भी अपने थाने वठा दिये और बीकानर चला गया।

राव का चित्तौड मे विवाह—

चित्तौड के राणा रायमल ने राव क लिय शादी का नारियल भेजा। राव फागुण बदि १३ १५७० वि०[2] के लग्न पर बरात लकर चित्तौड पहुँचा। माग म करणी जी से निवेदन किया तो उन्होंने अपने चार पोता[3] को उसके साथ भेजा।

राव नूणकरण क चित्तौड पहुँचने पर राणा (रायमल) का कुवर मागा दो कोस पर पेशवाई क लिये पहुँचा। राव न चित्तौड म प्रवश कर विवाह किया और बहुत सा त्याग बाटा। राणा ने बास हाथी और दो सौ घोडे दहेज मे दिय। दोनो ओर स अच्छा स्नेहमय व्यवहार रहा। इस के बाद राव विदा होकर बीकानर चला गया।

---

१ इस लडाई का वणन क्यामखानियो की तवारीख म नही है और नही उसम दौलत खा क किसी भाई का नाम रग खा लिखा है। (दवा०)।

२ बुधवार फरवरी २२ १५१४ ई०। सही तिथि फागुण बदि ३ (रविवार फरवरी १२ १५१४ ई०) है। देवीप्रसाद से यहा भूल हो गई एव ३ के स्थान पर १३ लिखा गया। (स०)।

३ सावल ईश्वर भोडर और कान्हड। (दवी०)।

जसलमेर पर चढाई और फतह—

राव लूणकरण क समकालीन रावल देवीदास[1] था । खागी का चारण मेहडू लाला जेतावत उसके पास मागने गया था । वह (रावल) उससे राठोडा का मजाक किया करता था । एक दिन लाला ने कहा 'आप चारणा से एसा मत कहो कि राठोड बहुत बुरे हैं ।' इस पर रावल ने क्रोधित होकर कहा कि तुम्हार राठोड मेरी जितनी जमीन मे घोडा फिरा देंगे वह सब जमीन म ब्राह्मणा को दान मे दे दूँगा ।' लाला और रावल के बीच कई सवाल जवाब हुए । लाला के रवाना होने के समय रावल विदाई म उस जो कुछ देना चाहता था उसे भी उसने स्वीकार नही किया । और बीकानर म आकर राव लूणकरण को उलाहना दिया और कहा कि 'उन्होने (रावल) कहा है कि यदि राठोड मेरी जमीन पर पैर भी रख दें तो मैं वह सारी जमीन ब्राह्मणा को पुण्य कर दू ।' आप काधल जी या बादाजी के बेटा को हुक्म दो सो रावल जी के दस बीस गावा म फिर आव ।' राव ने कहा तुम निश्चित रहो । मैं स्वय जाऊँगा ।' इसके बाद राव ने सेना एकत्रित करन का आदेश दिया । बीदा का पोता ठाकुर सागा ससारचदोत ३,००० सनिक लकर उपस्थित हुआ । इसी प्रकार वणीर बाघावत और राजसी वगरह भी आये । जब २० ००० सनिक एकत्रित हो गये, तब राव न रावल के विरुद्ध कूच किया । कुछ ही दिनो म गाव राजोबाइ डेरा हुआ । मडला का पुत्र (महेशदास) ५०० घोडे लेकर रवाना हुआ और जसलमेर की तलहटी को घडसीसर तालाब तक लूट कर पुन राव के पास लौट आया ।

तब रावल जतसी ने अपने सरदारा को एकत्रित कर उनस सलाह की और उसम रात्रि का राव क डेरे पर छापा मारन का निश्चय किया गया । रावल स्वय ५ ००० सनिक लेकर किल से उतरा और गाव राजोबाई म राव क ऊपर चला । परतु राव तो स्वय कमर बाँधे तैयार था । अत सामने जाकर उसस युद्ध किया । रावल युद्ध स्थान म ठहर नहीं सका और भाग गया । सागा ने उसका पीछा किया । तब रावल न पुन पीछे मुड कर सागा का मुकाबला किया और अत म वह पकडा गया । इतने म राव भी वहा जा पहुँचा था । सागा न रावल को बाध कर राव क पास उपस्थित

१ राव लूणकरण का समकालीन रावल जतसी था न कि रावल देवीदास । (स०) ।

किया। राव ने उसको उसी प्रकार हाथी पर बठा कर अपने साथ ले लिया और सुरक्षा के लिये भागा को साथ रखा। फिर राव की सेना जसलमेर में घुस गयी। जसलमेर को लूटा गया जिससे बहुत सा माल सेना के हाथ लगा।

राव ने लाला को रावल के डेरे में भेजा। उसने जाकर मुजरा किया। इससे रावल बहुत लज्जित हुआ। लाला ने रावल को एक गीत सुनाया और पूछा क्या रावल जी ! मेरे स्वामी राठोड कैसे है ?' परन्तु रावल ने तो शर्म के मारे उसकी तरफ आंख उठा कर भी नही देखा। तब लाला ने पुनः एक और गीत गाया समारचन्द की प्रशंसा का सुनाया और बाद में राव के पास चला गया। राव ने पूछा कि रावल जी से क्या रंग हुआ ? लाला ने कहा कि 'वे तो नाचे ही भाकते रहे।

राव की सेना का शिविर एक माह तक घडसीसर तालाव के ऊपर रहा था। तब तक भाटी किले से बाहर नहीं निकले और उसमें बैठे रहते हुए ही उन्होंने समझौता कर लिया। तब राव ने रावल को खिलअत देकर दुर्ग में भेज दिया। रावल ने भी राव के पुत्रों का विवाह अपने यहां करके दस घोडे दहेज में दिये और विदा किये।

ढोसा[1] के नवाब पर चढाई और राव का काम आना—

बाद में राव ने ढोसा (नारनोल) के नवाब पर आक्रमण किया। नवाब भी सामना करने के लिये आगे बढा। आक्रमण के वक्त उदयकरण बीदावत और भाटी अपना ईमान बेच कर भाग निकले। अतः राव की सेना के पांव उखड गये। फिर भी राव और कुंवर प्रतापसी करमसी और नतसी ने थोडे से सैनिक होते हुए भी भयंकर युद्ध किया। इस युद्ध में दोनों ओर के अनेक सैनिक मारे गये। और राव के नीचे तीन घोड़े भी मारे गये। अतः में राव पैदल ही लड़ा और शत्रुओं के इक्कीस सैनिकों को मार कर स्वयं भी मारा गया। पुरोहित देवीदास भी उसके साथ सेवा में रहा था। उसने भागते

१ ढोसी तो कर स्थान है जहां नारनोल के शेख अबा मीरा के साथ युद्ध हुआ था। आभा बीकानेर० भाग १ पृ० ११८। (म०)।

हुए बीदावता से कहा था कि 'अरे रावजी दवाव मे आ गये हैं तो उन्होंने कहा कि 'हम तो हमारे रावजी को लिये जाते हैं।' और जितने आदमी राव के साथ थे वे सभी राव के साथ काम आये।[1] उक्त घटना श्रावण वदि ९, १५८३ वि०[2] को गाव ढोमी[3] मे हुई थी।

राव लूणकरण के निम्नलिखित १२ पुत्र थे—

१ जेतसी
२ प्रतापसी जिसके प्रतापसिंहोत बीका हैं
३ वरसी—इसके पुत्र नारायण के नारायणोत बीका हैं
४ रतनसी—इसके पुत्र जैतसी के रतनसिंहोत बीका हैं जिनका ठिकाना महाजन है।
५ नेतसी
६ करमसी—उसको कसबा रिणी परगना सहित मिला था। चारण आशा भादा ने निम्न दोहा लिखा था—

---

१ क्यामखानिया की तवारीख क्याम (खा) रासा मे लिखा है कि बीका के हार कर आने के कुछ समय पश्चात् उसके पुत्र राव लूणकरण ने ढोसी पर आक्रमण करने के लिये बहुत सी सेना लेकर कूच किया और गाव पटोदी जो फतहपुर से १२ कोस दूर है डेरा किया। वहा से एक खास रुक्का नवाब दौलत खा क्यामखानी को भेंट देने के लिये लिखा। मगर उसकी लिखावट बहुत ओछी थी। इस कारण नवाब दौलत खा ने वैसा ही जवाब देकर वकील को वहा से निकलवा दिया। जब राव लूणकरण ने यह समाचार सुना तो उसने कहा कि ढोसी को फतह करने के बाद फतहपुर को भी फतह करूगा और वह ढोसी की तरफ चला। वहा पठानो ने ऐसा मुकाबला किया कि वह बहुत से मनिको के साथ मारा गया और उसका माल असबाब भी मुसलमानो ने लूट लिया। (दवी०)। क्याम खा रासा पृ० ८२-४३।

२ मगलवार जुलाई ३ १५२६ ई०। राव के स्मारक लेख के अनुसार उसकी मृत्यु वशाख वदि २ १५८३ वि० (मार्च ३१ १५२६ ई०) को हुई थी। आभा० बीकानेर० १ पृ० ११९। (स०)।

३ ढोसी गाव का नाम नही पहाडी का नाम है जो नारनोल के पश्चिम मे तीन कोस पर स्थित है और अनेक गाँव उसके नीचे बसे हुए हैं। (दवी०)।

लिया । राव ने उनको उसी प्रकार हाथी पर बठा कर अपने साथ ले लिया और सुरक्षा के लिये सागा को साथ रखा। फिर राव की सेना जसलमेर में घुस गयी। जसलमेर को लूटा गया जिसमे बहुत सा माल सेना के हाथ लगा ।

राव ने लाला को रावल के डेरे में भेजा । उसने जाकर मुजरा किया। इससे रावल बहुत लज्जित हुआ । लाला ने राव का एक गीत सुनाया और पूछा क्या रावल जी ! मेरे स्वामी राठौड़ कैसे हैं ? परन्तु रावल ने तो शर्म के मारे उसकी तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखा । तब लाला ने पुन एक और गीत सागा समरचन्दोत की प्रशंसा का सुनाया और बाद में राव के पास चला गया । राव ने पूछा कि रावल जी से क्या रंग हुआ ? लाला ने कहा कि 'वे तो नीचे ही झांकते रहे ।'

राव की सेना का शिविर एक माह तक घड़सीसर तालाब के ऊपर रहा था। तब तक भाटी किले से बाहर नहीं निकले और उसमें बैठे रहते हुए ही उन्होंने समझौता कर लिया । तब राव ने रावल को खिलअत देकर दुर्ग में भेज दिया । रावल ने भी राव के पुत्रों का विवाह अपने यहां करके दस घोड़े दहेज में दिये और विदा किये ।

ढोसी[1] के नवाब पर चढ़ाई और राव का काम आना—

बाद में राव ने ढोसा (नारनोल) के नवाब पर आक्रमण किया । नवाब भी सामना करने के लिये आगे बढ़ा । आक्रमण के वक्त उदयकरण बीदावत और भाटी अपना ईमान बेच कर भाग निकले । अत राव की सेना के पांव उखड़ गये । फिर भी राव और कुंवर प्रतापसी करमसी और नतसी ने थोड़े से सैनिक होते हुए भी भयंकर युद्ध किया । इस युद्ध में दोनों ओर के अनेक सैनिक मारे गये । और राव के नीचे तीन घोड़े भी मारे गये । अंत में राव पैदल ही लड़ा और शत्रुओं के इक्कीस सैनिकों को मार कर स्वयं भी मारा गया । पुरोहित देवीदास भी उसके साथ खेत रहा था । उसने भागने

१ ढोसी तो वह स्थान है जहां नारनोल के शेख अबा मीरा के साथ युद्ध हुआ था । ओझा बीकानेर० भाग १ पृ० ११८ । (स०) ।

नए बीदावता से कहा था कि अगर रावजी दबाव में आ गये हैं तो उन्होंने कहा कि हम तो हमारे रावजी को लिये जाते हैं। और जितने आदमी राव के साथ थे वे सभी राव के साथ काम आये।[1] उक्त घटना श्रावण वदि ९ १५८३ वि०[2] को गाव ढोसी[3] में हुई थी।

राव लूणकरण के निम्नलिखित १२ पुत्र थे—

१ जतसी
२ प्रतापसी-जिसके प्रतापसिंहोत बीका हैं
३ बैरसी—इसके पुत्र नारायण के नारायणोत बीका हैं,
४ रतनसी—इसके पुत्र जतसी के रतनसिंहोत बीका हैं जिनका ठिकाना महाजन है।
५ नेतसी
६ करमसी—उसको कसबा रिणी परगना सहित मिला था। चारण आशा भादा ने निम्न दोहा लिखा था—

१ क्यामखानिया की तवारीख क्याम (खा) रासा में लिखा है कि बीका के हार कर आने के कुछ समय पश्चात् उसके पुत्र राव लूणकरण ने ढोसी पर आक्रमण करने के लिये बहुत सी सेना लेकर कूच किया और गाव पटाने जो फतहपुर से १२ कोस दूर है डेरा किया। वहा से एक खास रुक्का नवाब दौलत खा क्यामखानी को भेंट देने के लिये लिखा। मगर उसकी लिखावट बहुत अच्छी थी। इस कारण नवाब दौलत खा ने वैसा ही जवाब देकर वकील को वहा से निकलवा दिया। जब राव लूणकरण ने यह समाचार सुना तो उसने कहा कि ढोसी को फतह करने के बाद फतहपुर को भी फतह करूगा और वह ढोसी की तरफ चला। वहा पठानों ने ऐसा मुकाबला किया कि वह बहुत से मनिको के साथ मारा गया और उसका माल-असबाब भी मुसलमानो ने लूट लिया। (दयाल०)। क्याम खा रासा पृ० ४२-४३।

२ मगलवार जुलाई २, १५२६ ई०। राव के स्मारक लेख के अनुसार उसकी मृत्यु वैशाख वदि २ १५८३ वि० (मार्च ३१ १५२६ ई०) को हुई थी। आभा० बीकानेर० १ पृ० ११९। (स०)।

३ ढोसी गाव का नाम नहीं पहाड़ का नाम है जो नारनौल के पश्चिम में तीन कोस पर स्थित है और अनेक गाव उसके नीचे बसे हुए हैं। (दवी०)।

दोहा

मादू जो ससार माटी मू घड़िया महण ।
तो घड़िया करतार, काया हूता करमसी ।।

भादा के उक्त दोहे पर करमसी ने उसको करोड पसाव देना निश्चित करके उसके लिये अपने कुंवर कीरतसिंह को साथ लिया। उसका सिरोही के गाव कालिंद्रा के ठाकुर की पुत्री से विवाह हुआ था। इस कारण वह अपने श्वसुराल में ही रहा। उसके वशज कीरतसिंहोत बीका सिरोही के क्षेत्र में रहते हैं।

७ किशन
८ रामसी,
९ सूरजमल
१० कुशल,
११ रूपसी।

राव लूणकरण के बारहवें के बाद जतसी गद्दी पर बैठा था।

(अर्थात् मातम पुरसी) को आया हू।' राव ने कहला भेजा अच्छा मालूम हुआ। अब तुम तयार रहना, मैं आता हू।' उदयकरण यह सुन कर द्रोणपुर की तरफ चला गया। उसके इस काय से उसकी बहुत बदनामी हुई थी कि मुह काला कर के आ खडा हुआ।'

तदनतर श्रावण बदि १५ १५८३ वि०[1] को राव जेतसी गद्दा पर वठा। आश्विन सुदि १४ को दमनाक गया और करणी जी के दशन कर कार्तिक बदि २[3] को वापस लौटा।

द्रोणपुर और सिहानकोट की फतह—

राव ने आश्विन सुदि १०, १५८६ वि०[4] को सेना क साथ द्रोणपुर पर आक्रमण के लिय कूच किया। सेना द्रोणपुर के पास जा पहुँची। तब बीदावत उदयकरण ने वहा स भाग कर नागोर के खान के यहा शरण ली। राव जतसी ने परगना सहित द्रोणपुर बीदावत सागा ससारचदोत का द दिया।

तब सना वहा से रवाना होकर सिहानकोट पहुँची। जोहिया तिहुन-पाल वहा से भाग कर सतलज और लाहोर का तरफ चला गया। राव न सिहानकोट का उजाड दिया और दुग का नप्ट कर दिया। तदनतर सना बीकानर लौट आयी। इस सना का सेनापति सागा ससारचदोत था।

सांगा की मदद—

राव लूणकरण की पुत्री बालाबाई[5] का विवाह आम्बर क राजा

---

१ सोमवार जुलाई ९ १५२६ ई०। राव लूणकरण की मृत्यु माच ३१ १५२६ ई० को हुई थी। अत अप्रल १५२६ ई० मे जतसी निश्चित रूप से गद्दी पर बठ गया होगा। (स०)।

२ बुधवार सितम्बर १९ १५२६ ई०।

३ शनिवार सितम्बर २२ १५२६ ई०।

४ सोमवार सितम्बर १३ १५२९ ई०। मुशी दवाप्रसाद से यहा सम्वत् म भूल हो गयी है। वस्तुत सवत् १५८४ वि० (अक्तूबर ४ १५२७ ई०) होना चाहिय। ओझा० बीकानेर० १ पृ० १२३। (स०)।

५ बालावाइ वडा भगवत् भक्त थी। इसी कारण वह ससुराल म भी बाई कहलाती थी।

पृथ्वीराज के साथ हुआ था। उसके बारह पुत्रों के वंश म बारह कोटडियां आम्बेर के जागीरदारा म प्रसिद्ध हैं। पृथ्वीराज का उत्तराधिकारी पुत्र भीम था। वह अपन पिता (पृथ्वीराज) के मरणोपरान्त शासक बना था। वह केवल दो माह राज्य करने के बाद ही मर गया था। तब उसका छोटा भाई रतनसी (आम्बेर की राज्य) गद्दी पर बैठा। रतनसी और बालाबाई के पुत्र सागा के बीच वैमनस्य हो गया। बीकानेर आकर सांगा ने रतनसी के विरुद्ध राव जैतसी स सहायता मांगी। राव ने १५०० सैनिक उसकी सहायतार्थ भेजे, उनम निम्नलिखित सरदार थे—

१ चाचावाद का वणार वाघावत
२ महाजन का ठाकुर रतन लूणकरणावत
३ राजासर का रावत किशनसिंह कांधलोत,
४ माहव का खेतसी अरडकमलोत,
५ भलू का भोजराज
६ घडसीसर का बीका देवीदास,
७ रावत बैरसी
८ बीटगोक का भाटी धनराज पूगल के राव सखा का पौत्र,
९ खारवाडे का भाटी किशनसिंह वाघावत
१० सिहोन के मलिक का पुत्र जाहिया हामो
११ वैद मेहता अमरा
१२ वच्छावत सागा और
१३ पुरोहित लक्ष्मीदास देवीदासोत।

सागा ने आम्बेर के राज्याधिकार क्षेत्र में जाकर अमरसर से फागी मौजाबाद तक अधिकार कर लिया, और आम्बेर के अनेक सरदार उससे आ मिले। परन्तु सागा ने रतनसी को पाटवी समझ कर आम्बेर म प्रवेश नहीं किया और उसके पास अपने नाम से सागानेर[1] नामक

---

१ यह वही सागानेर है जहा का रगाई और छपाई प्रसिद्ध है। (रवी)।

न जेतसी स कहा कि जोधपुर आपकी सहायता स ही मेर अधिकार म रहा है। और राव जतमी का एक हाथी और श्याम रग क दो घाडे मान की माज के साथ दिय। तदनन्तर राव जेतमी विदाई कर करणी जी के दशन करते हुए बीकानर गया और गागा जाधपुर गया।

करणीजी का इन्तकाल—

चत सुदि ९, १५९५ वि०[1] को करणी जी का स्वगवास हो गया। राव न देसनोक म उनका मन्दिर बनवाया ग्रार उनकी प्रतिमा जो खाती बना कर लाया था वह उस मदिर म स्थापित करके प्रतिष्ठा की।[2]

बीकानेर पर शाह कामरां का ग्राना ग्रौर हार कर भाग जाना—

कामरा बाबर बादशाह का बटा और हुमायूँ बादशाह का भाई था। उसका एक जनी पडित भावन्देव सूरि दिल्ली जाकर भटनर पर चन्

१ गुरुवार माच २८ १५३९ ई०।
२ करणी जी सवत् १५९४ वि० म जसलमेर गयी थी क्योकि रावल जेतसी का बदन बिगड गया था और वह देसनाक म ग्राना चाहता था। परन्तु करणी जी उसका भाव देख कर स्वय ही वहा पहुँच गइ। रावल न एक मजिल सामन जाकर दशन किय। करणी जी न हाथ फेर कर उसका बदन अच्छा कर दिया। तदनन्तर वह एक खाती के मकान पर गयी जा ९० वष का वृद्ध और अधा हो गया था। करणी न उसकी ग्राखे अच्छी कर दी ग्रौर उसस कहा कि मरी प्रतिमा बना द। वहा से वह खाइ डे हाकर गाव बेंगटी गई। वहा हरभूजी साखला न जो कि मारवाड के पारो म स एक था खान की मनुहार की। करणी जी न कहा कि भाई साखला! कुछ समय तक धीरज रख (जरा सब्र कर)। तब वह गाव घडियाला म तालाब क उपर गाडी स उतरी और ध्यान करन लगी। कुछ समय बाद उसक बदन से ग्राग की लपटें निकली ग्रौर ग्रासमान म जाकर सूय स मिल गया। जब राव जतमा न उनका मदिर बनाया तब वह खाता उनकी प्रतिमा लकर दसनोक गया ग्रौर वह प्रतिमा ग्रौर चादी का तोरण भी राव न चढ़ाया था जा अब तक विद्यमान है। (दवी०)।

लाया।[1] उक्त किला कुछ समय पूर्व राव जैतसी के आदेश से साहव के ठाकुर अरड़कमल कांधलोत और पूरणमल वगरह ने सिंधु चायल से फतह किया था। शत्रु ने उसको घेरा। किलेदार सतसी बहुत दिनों तक लड़ा परन्तु जब वह मारा गया तो दुर्ग पर कामरा का अधिकार हो गया। उसने वहां से बीकानेर पहुँच कर घडसीसर तालाब पर शिविर लगाया। और किले को घेर कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। राव ने तुर्कों को शक्तिशाली समझ कर अपने सब भाई-बेटों और सरदारों से सलाह की। उन्होंने कहा कि शत्रु है तो शक्तिशाली परन्तु हम लड़ कर उसको पराजित करेंगे। राव ने कहा कि इस राज्य की सुरक्षा का भार करणी जी पर है वह ही हम सब की इस कठिनाई को दूर करेगी।' यह कह कर राव ने किले की सुरक्षा की व्यवस्था की और देशनोक गया। वहां दर्शन करके मन्दिर में बैठ गया और फतह की अर्ज करने लगा। अन्त में उसको देवी का एक हाथ नजर आया आदेश हुआ कि 'रात्रि को अचानक छापा मार तुम्हारी विजय होगी। राव ने पुनः बीकानेर आकर आश्विन सुदि ५, १५९५ वि०[2] को २००० सैनिकों के साथ छापा मारा। और करणी जी की मदद से कामरा को भगा कर विजय प्राप्त की।[3]

१ भटनेर को अब हनुमानगढ़ कहते है। वह प्राचीन शहर है। कहते है कि राजा दशरथ के पुत्र भरत ने उसको बसाया था और इसका वास्तविक नाम भरतनेर रखा था। वह कई बार उजड़ा और पुनः बसा। अन्त में १००० वर्ष पूर्व जोहियों ने उसको बसाया। परन्तु पुनः आपस के झगड़े के कारण उजाड़ दिया और वे स्वयं वहां से २५ कोस दूर मिठानकोट में जा बसे। बहराम खां लोदी ने भटनेर को पुनः बसाया। उससे फूनडे के भाटी बरसी ने लेकर भटनेर नाम रख दिया। उससे जालधर जोहियों ने ले लिया। बहुत वर्षों तक वह जोहियों के पास रहा। फिर सिंधु चायल ने उस पर अधिकार कर लिया। उससे राठोड़ो ने लेकर उसको आबाद किया। (देवी०)।

शनिवार सितम्बर २८ १५३८ ई०।

लिखा है कि उस समय कामरा क्या देखता है कि हजारों चारणियां चक्र चला रही है। तब उसने कहा कि पीरों की इस जगह क्या आ पड़े भाई? और फिर उसने अपना घोड़ा भगाया। गांव गाछनी में जाकर उसका किरनिया (एक प्रकार का छत्र) गिर गया जहां उसके दर्शन होते है। राव ने वह गांव एक चारण को दे दिया। कामरा की सेना १०० कोस जाकर एकत्रित हुई। (देवी०)।

जोधपुर के राव मालदेव की चढाई और राव जेतसी का काम आना—

सम्वत् १५९८ वि० मे जोधपुर के राव मालदेव ने अपने सरदारो कू पा महराजोत, पचायण करमसिहोत और २०००० सेना के साथ बीकानेर पर आक्रमण करने के लिये कूच किया। राव जतसी भी उसस मुकाबला करने के लिये अपनी सुसज्जित सेना लेकर गाव साहबे गया। नगर और दुर्ग की सुरक्षा के लिये भेलू व चाखू के ठाकुर रूपावत भोजराज सादावत के नेतृत्व मे १५०० सनिक रखे गये। किलेदार साखला महेशदास था।

राव ने पठानो से रु० २०००० के घोडे लिये थे। परन्तु कामदारो ने उनके रुपये नही दिये थे। इस कारण उक्त पठान भी राव के साथ ही गाव साहबे जा पहुँचे। जब राव शिविर मे प्रविष्ट होने लगा, उस समय उसने उन पठानो को देखा तो उनको बुला कर कहा कि तुम यहा क्यो आये? हम तो कल लडाई करेंगे। पठानो ने निवेदन किया कि अन्नदाता हम भी सरकार के नौकर है और हमारे रुपये अब तक प्राप्त नही हुए हैं। यह सुन कर राव कामदारो पर बहुत नाराज हुआ। और कहा कि हरामखोरो ने रुपये नही दिये। मैंने कह दिया था कि रुपये दे देना और अब मैं लडने के लिये आया हूँ। फिर किसी का कर्ज क्यो रखू? यह कह कर साहणी रामा से दो घोडे तयार करवाये और दरबारी माधवदास भारमलोत से कहा कि यदि कोई सरदार या भाई सलाम करने आवे तो मत आने देना। इतने मे हम भी आ जावेंगे। यह कह कर राव पठानो को साथ लेकर बीकानेर के लिये रवाना हुआ। पहर रात्रि होने के समय वहा जा पहुँचा। रूपावत भोजराज और साखला महेशदास ने प्रवेश द्वार खोला। अन्दर जाकर राव ने मालू और धन्ना से कहा कि लो अपने रुपये ले लो। उन्होने अर्ज की कि अन्नदाता अभी तो आपके ऊपर लडाई का वक्त आ गया है। हमारे रुपये कहा जाते हैं? हमको गाव साहबे मे यह खयाल नही हुआ और आपका यहा आना उचित नही था इस पर राव ने जिद की परन्तु उन्होने तो रुपये नही लिये और कहा कि आपकी फतह होगी तब ले लेवेंगे। इन बातो मे एक पहर व्यतीत हो गया। फिर उन लोगो को वहा दुर्ग मे रख कर राव पुन अपने शिविर के लिये रवाना हुआ। भोजराज ने पच्चास सवार राव के साथ भेजे। परन्तु उधर सेना मे राव के पीछे चल आने से पहिले ही यह खबर फैल गयी थी कि राव निकल गये। यह सुन कर निम्नलिखित सरदार गाव के शिविर पर पहुँचे—

१ महाजन का अजु नसिंह रतनसिहात
२ द्रोणपुर का राव सागा का बटा
३ चाचावाद का बणीर
४ साहूव क खेतसी का पुत्र साईदास
५ सिकराली का भारमल माडणात
६ रूपसी लूणकरणोत
७ गरव का डूगरसी
८ बाठनाक का भाटी धनराज
९ खारवाडे का भाटी किशनसिह
१० मारू के का चन्द्रसेन
११ बीदावत सूरसिह प्रतापसिह
१२ घडमीसर का देवीदास
१३ जमलसर का भाटी करणसिह और
१४ पूगल का राव वेरसी।

उपरोक्त सरदारो न माधवदास स पूछा कि क्या रावजी स मिलन का मौका है? उसन कहा—नही! सोय हुए है। यह सुन कर उन्होन तकरार की और कहा कि हमारा उनसे मिलना अत्यावश्यक है। तुम पाव पर हाथ लगा कर उनको जगा दो। तब उसन लाचार होकर कह दिया कि रावजी सौदागरो को रुपय दन बाकानर गय हैं सो अभी आ जावेंग। इस पर सरदारो न समझा कि राव अब नही आवगा। वह यह झगडा हमार सिर पर छोड गया है। उसस लडाई करन की सामर्थ्य नही रही। यह सोच कर सब सरदार वहा स चले गये। केवल राव के डेरे क लगभग १०० सेवक रह गय थे।

राव सूर्योदय क दो घण्टे बाद अपन सताइस सवारो के साथ अपनी सना म जा पहुचा। उसी रात्रि को राव मालदेव की सना भी उसी गाव म जा पहुँची। राव उस अपनी ही सना समझ कर शिविर पर आया। माधवदास और अन्य नौकरो न आगे जाकर राव को सलाम किया। और राव को सभी हालात स अवगत कराया। राव न कहा—तब तो यह राव मालदेव की सना दीखती है। मालदेव क गुप्तचर भी लग हुए थ। उन्होन जाकर मालदेव को सूचना दी कि राव जतसी अपन शिविर म आ गया है। राव

मालदेव ने तत्काल राव जेतसी पर आक्रमण कर दिया। राव जेतसी ने भी अपने सत्ताईस घुड़सवारों और १०० पैदल राजपूतों के साथ उसका सामना किया। राव ने मालदेव को देख कर घोड़े की बाग ली, और पास जाकर तलवार मारी। मालदेव ने तलवार के प्रहार को ढाल पर रोका परन्तु ढाल कट गई और तलवार घोड़े की कनौती (कान) पर लगी जिससे घोड़े की खोपड़ी उड़ गयी। इतने में तो राव जेतसी को कई सैनिकों ने घेर लिया। राव अकेला उन सब का मुकाबला करता रहा। अन्त में १७ व्यक्तियों को मार कर चैत्र वदि ११ १५९८ वि०[1] को वह स्वयं भी काम आया। राव जेतसी के १२७ व्यक्ति भी मारे गये। उनमें निम्नलिखित सरदार थे—

१ सोनगरा सांगदेव जयमलोत बाप का
२ माहणी रामा वेलासर का
३ दरबारी माधो भारमलोत जनमालोत राठौड़
४ पुरोहित लक्ष्मीदास देवीदासोत।

राव मालदेव का घोड़ा जेतसी के हाथ से मारा गया था। अतः शकुन शास्त्रियों ने कहा कि यह ठिकाना राव जेतसी के वंशज के अधिकार में रहेगा और उस घोड़े का सिर कटा है इसलिये राव मालदेव की राजधानी पर इस वर में जेतसी के वंशजों का अधिकार हो जाना चाहिये।

राव मालदेव साहवे से कूच करके बीकानेर गया। किलेदार भोजराज ने कुंवर कल्याणमल और भीमराज को सपरिवार बाहर निकाल दिया। वे तीसरे दिन सरसे में प्रविष्ट हुए। यहां रूपावत भोजराज और साखला महेशदास तीन दिन तक किले में से लड़े। चौथे दिन अफीम गलाया और इन्होंने सभी राजपूतों को पिलाया। फिर किले के हाथ देकर १५०० राजपूतों ने केसरिया पहना और किले के द्वार खोल कर बाहर निकले। इनके साथ धन्ना और सालू भी थे। उन सब ने राव मालदेव की सेना पर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई में राव मालदेव के २००० सैनिक और वे सभी (जेतसी की सेना) भी काम आये। धन्ना और सालू भी पांच व्यक्तियों को मार कर मारे गये। रूपावत भोजराज के हाथों राव मालदेव का सरदार जगमाल दुजनदासोत माण्डणोत राठौड़ मारा गया था।

---

१ रविवार मार्च १२ १५४२ ई०।

राव मालदेव ने बीकानेर पर अधिकार कर लिया। कूंपा महराजात और पचायण करमसिहात को थाणेदार रखा। तदनन्तर राव पुनः जोधपुर लौट गया। बीकानेर के लगभग आधे राज्य पर राव का अधिकार हो गया था और शेष भाग पर कल्याणसिंह का ही अधिकार रहा।[1]

राव जतसी के निम्नलिखित पुत्र थे—

सोढी राणी कश्मीर दे के पेट से—

१ कल्याणसिंह

२ भीमराज—इनके भीमराजोत बीका कहलाते हैं

३ ठाकुरसी इसने जैतपुर बसाया

४ मालदेव

५ कान्हा।

---

१ जोधपुर की ख्यात में लिखा है कि राव मालदेव के सरदार कूंपा और जैता के शिविर संवत् १५९९ वि० में डीडवाणा की तरफ थे। वे एक दिन दरबार में बैठे हुए कह रहे थे कि राव ने सम्पूर्ण क्षेत्र पर अधिकार कर लिया है। आज कोई नहीं है जो उसका सामना कर सके। यह बात एक चारण ने बीकानेर जाकर राव जेतसी से कही। राव के मुंह से निकल गया कि अभी कोई काका का जाया नहीं मिला। यदि मिलता तो मालूम पड़ जाता। यह सुन कर एक राठोड़ ने कहा राव जी ऐसा मत कहो। कोई सुनेगा तो अच्छा नहीं है।' अतः में उसी चारण ने कूंपा और जैता के पास जाकर कहा कि राव जैतसी ऐसा ऐसा कह रहा था। उस समय तो उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और कुछ दिन बाद नागोर में ५०० लाव १० ००० परवालें और २०० गावडया मगवा कर बीकानेर के विरुद्ध कूच किया। राव जैतसी ने भी सान काम आगे कर गाव साहव में युद्ध किया और काम आया। राव (मालदेव) की विजय हुई। साथ ही राव मालदेव को बधाई भेजी गई कि राठोड़ जैता और कूंपा ने बीकानेर जीत लिया है। आप यहां आवें। अतः राव बीकानेर गया और बीकानेर के किले में एक महल के दरवाजे पर हाथ रख कर बोला कि जाग राव जैत और वहां से क्यामखानियों के अधिकार क्षेत्र शेखावाटी पर अधिकार करने के लिए कूच किया। फतहपुर झुंझनू पर अधिकार कर लिया और ~ राठोड़ कूंपा को भेंट में दे दिया। (ख्या०)।

मानगरी राणी रामकु वर के पेट मे—

१ शृ ग जिसके शृ गोत बीका है
२ सुजन जिसन सुजनसर गाव वसाया
३ कमसेन
४ पूरणमल
५ अचलदास
६ मान
७ भोजराज,
८ तिलोकसी ।

निम्नलिखित पाच राणिया राव के साथ सती हुई थी—

१ सोढा कश्मीर दे सोढा जतमाल देवकरणोत की पुत्री । उसने कश्मीरसर गाव वसाया ।
२ सोढी लाडकु वर जैतमाल दासावत की पुत्री ।
३ सोढी महाकु वर सान्ता तजमाल जतसिहोत का पुत्री ।
४ कछवाही ठाठम द कछवाहा नाथा जगमालोत की पुत्री ।
५ भाली जसकु वर राम नगावत की पुत्री ।

मारवाड

राव मालदेव

राव मालदेव मारवाड के राजाओं में बड़ा बहादुर और भाग्यशाली हुआ। वह संवत् १५८८ (१५३१ ई०) में जोधपुर की गद्दी पर बैठा था और उसी वर्ष में उसने चढ़ाई प्रारंभ करके सम्पूर्ण मारवाड के क्षेत्रों में जहाँ पर राजपूत सरदारों और नागौर और जालोर पर मुसलमानों का अधिकार था उनको पराजित किया। फिर इधर जब उदयपुर के महाराणा और गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के और बादशाह हुमायूँ और शेरशाह पठान के आपस में लड़ाई का मौका देखा तो उसने सेना भेज कर अरावली पहाड़ों से जमुना के पास तक का सम्पूर्ण क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया। इसके अतिरिक्त आधा-आधा राज्य आम्बेर (जयपुर) उदयपुर और जसलमेर का और बीकानेर का सम्पूर्ण क्षेत्र ले लिया

तब तो बीकानेर वगैरह के राजा और भोमिया शेरशाह के पास शिकायत लेकर गये। उधर जब हुमायूं बादशाह शेरशाह से हार कर राव मालदेव से मदद लेने के लिये सिंध होकर मारवाड़ में आया उस समय हुमायूं के आदमियों ने कई जगह गाय मारी। अतः मारवाड़ के राजपूत नाराज हो गये और बादशाह हुमायूं को बिना सहायता हो पुनः सिंध की तरफ लौटना पड़ा। यह समाचार सुन कर शेरशाह ने आगरा से राव के ऊपर चढ़ाई की। शेरशाह का सामना करने के लिये राव मालदेव ८०,००० सवार लेकर अजमेर गया। राव मालदेव की विशाल सेना देख कर शेरशाह भयभीत हो गया और पीछा जाने लगा था। परंतु मेड़ता के राव बीरम ने कहा कि आप कुछ समय के लिये ठहरें। मैं रावजी को बातों (कूटनीति) से भगा दूंगा। फिर उसने शाही मुंशी से १०० हुक्म राव के सरदारों के नाम लिखवा कर ढालों की गद्दियों में सिलवा दिये और एक एक ढाल एक एक व्यापारी के साथ उस सरदार के पास जिसके नाम का हुक्म उसमें बंद था भेज कर कहा कि जिस किसी भी मूल्य पर वह खरीदे देकर आना। और फिर १,००,००० मुहर बादशाह के सिक्के की राव के बाजार में भेज कर जिस मूल्य में बिक सकी बिकवा दी।

जब इस तरह वे ढालें और मुहरें राव की सेना में पहुँच गई तब एक दिन रात के वक्त बीरम ने राव के पास जाकर कहा कि हम तो आपसे रूठ कर बादशाह के पास चले गये उसका कारण तो यह है कि आपने हमारी रोटी छीन ली है परन्तु आपके सरदार क्या बदले हुए हैं? राव ने कहा मैं नहीं जानता। बीरम ने कहा आप उनकी ढालों की गद्दियां चीर कर देखें तो मालूम हो जावेगा। वह इतना कह कर वापस लौट गया और बादशाह से कहा कि कल परसों आप देख लेना कि रावजी कहां जाकर ठहरते हैं।

इधर बीरम की बात को सुन कर राव बहुत भयभीत हुआ और रात बड़ी बेचैनी से निकली प्रातः ही जब सरदार सलाम करने आये और उनके पास नई ढालें जो उन्होंने पिछले रोज दिल्ली के व्यापारियों से खरीदी थीं, देखीं तब तो राव को और भी शक हुआ। वे सब ढालें देखने के बहाने से लेकर रख लीं और उनको सीख देकर ढालों की गद्दियां उधड़वाई। उन ढालों में एक एक हुक्म फारसी में लिखा हुआ इस आशय का निकला था कि

१०००० मुहरें तुम्हारे पास भेजी जा रही हैं। अब तुम अपने मसमौन के अनुसार राव को पकड़ कर हाजिर करो।' यह मजमून सुनते ही राव के कान खड़े हो गये। उसने अविलम्ब बाजार में आदमी भेज कर जाँच कराई तो मालूम हुआ कि बादशाह के नाम की बहुत सी मुहरें सर्राफों (व्यापारियों) के पास हैं।

इन बातों से राव ने यही नतीजा निकाला कि सरदार अवश्य ही बादशाह से मिले गये हैं और लड़ाई के समय उसके साथ विश्वासघात करेंगे। यह सोच कर राव ने रात को मारवाड़ की तरफ प्रस्थान कर दिया। सरदारों ने मालदेव को बारबार निवेदन किया कि वे बादशाह से नहीं मिले हैं और न कोई रिश्वत ही उन्होंने ली है। साथ ही ढालों में जो कागज निकले उनके बारे में उनको कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'आप हम पर विश्वास करें और कल ही देख लें कि हम बादशाह से कैसे लड़ते हैं।' राव ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया और सीवाना की तरफ चला गया। तब जैता और कूंपा वगैरह बड़े-बड़े सरदारों ने १० ००० राजपूतों के साथ शेरशाह पर आक्रमण करने के लिये कूच कर दिया। लेकिन रात्रि में मार्ग भूल कर दिन निकले एक नदी के तीर पर जा पहुँचे। वहाँ खूब अमल पानी करके फिर रवाना हुए और शेरशाह की सेना पर जो मारवाड़ क्षेत्र के परगना जेतारण के गाँव सुमेल और गिरी में थी तलवारें खेंच कर दिन न्हाड़े जा पड़े। ऐसी बहादुरी से लड़े कि बादशाह घबरा गया। यदि उस वक्त पीछे से आने वाली दूसरी सेना वहाँ नहीं पहुँचती तो बादशाह और उसके ५०-६० हजार सैनिकों का काम तमाम हो जाता। परन्तु दूसरी सेना के समय पर पहुँच जाने से बादशाह का बचाव हो गया। राव के सब सरदार मारे गये। शेरशाह की विजय हुई। लेकिन वह कोई ज्यादा खुश नहीं हुआ और बोला मुट्ठी भर बाजरे के वास्ते हिन्दुस्तान की बादशाही खोई होती। और जोधपुर पहुँच कर बीरम को मेड़ता और राव कल्याण को बीकानेर दिला दिया। यह बात संवत् १६०० (१५४३ ई०) की है।

तब से तीसरे वर्ष में शेरशाह के मरने की खबर सुन कर राव ने उसके सूबेदार से जोधपुर छीन लिया। और तदनन्तर इस वर्ष तक पुनः मरु व्यवस्था और विस्तार कर फिर से मारवाड़ में अपना आधिपत्य जमाया। उसने अजमेर पर अधिकार कर लेने पर मालदेव की उदयपुर के राणा

उदयसिंह से कई लडाइया हुइ। सवत् १६१२ (१५५५ ई०) म ग्रकबर बादशाह गद्दी पर बठा। और उसने पिछली बात को याद करके मारवाड पर सेना भेजी। उमने ग्रजमेर, मेडता नागोर डीडवाएा जैतारण ग्रौर जालोर वगरह परगने राव के हाकिमा से फतह कर लिय। राव ने उसका सामना करने क लिय नागोर का तरफ सना भेजी। वह सना पराजित हा गई ग्रौर नागोर पर मालदव का ग्रधिकार नही हो पाया।

कार्तिक सुदि १२, १६१९ वि०[1] को राव की जोधपुर म मृत्यु हो गयी। उसके साथ सतीस स्त्रिया सती हुई थी।

मालदेव ने ३१ वष राज्य किया। वह बडा बहादुर ग्रौर प्रतापी हुआ। उस वक्त हिदुस्तान म उसके बराबर और कोई शक्तिशाली राजा नही था। फारसी ग्र थो म भी उसकी प्रशमा की गई है।

---

१ मगलवार नवम्बर १० १५६२ ई०।

परिशिष्ट

हल्दीघाटी के युद्ध की सही तिथि-तारीख

लेखक

मनोहरसिंह राणावत

१६ वी शताब्दी से भारतीय इतिहास मे एक नये युग का प्रारंभ होता है। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे बाबर ने दिल्ली पर आक्रमण किया और इब्राहिम लोदी को पराजित कर मुगल साम्राज्य की नींव रखी। उसमे लाभ उठा कर सन् १५५६ ई० मे मुगल सेनाओ ने दिल्ली की अफगान सल्तनत के सेनानायको को पानीपत के द्वितीय युद्ध मे पराजित कर भारत मे मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

अकबर ने राजस्थान के राजपूत शासको के प्रति एक नई नीति अपनाई थी, क्योंकि आचार्य यदनाथ सरकार के शब्दो

कि यदि राजपूतों के हृदयों पर वह विजय पा सके तो ये ही राजपूत इस नवनिर्मित साम्राज्य के विरोधपूर्ण धनाच्छान्ति भाग्याकाश में उस साम्राज्य की भावी आशाओं तथा उसकी स्थायी सत्ता के उद्गम का एक मात्र ध्रुव सितारा बन कर चमकेंगे। अकबर की इस नई नीति को आम्बेर के कछवाहों तथा राजस्थान के कई अन्य राजपूत शासकों ने स्वागत कर तदनुसार मुगल साम्राज्य का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। डूंगरपुर सिरोही ईडर आदि राज्यों के शासकों को मुगल सेनाओं से पराजित होने के बाद विवश होकर मुगल आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा था।

परन्तु अकबर मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा प्रताप से भी मुगल आधीनता स्वीकार कराने को समुत्सुक था और उसी उद्देश्य से उसने कई प्रतिनिधि भी महाराणा प्रताप के पास भेजे परन्तु उसने किसी की नहीं सुनी। तब अन्त में आम्बेर के कुंवर मानसिंह को मेवाड़ पर चढ़ाई करने को सम्भवतः अप्रेल ३ १५७६ ई० के दिन अजमेर से रवाना किया। मुगल मेवाड़ सेना का सामना खमनोर के पास बनास नदी के काँठे में हुआ। तब वहाँ जो भीषण युद्ध हुआ वह इतिहास में हल्दीघाटी के युद्ध के नाम से सुज्ञात है।

महाराणा प्रताप ने अपने सारे शासन-काल में यही एक युद्ध खुले मैदान में जम कर लड़ा था। महाराणा प्रताप को विफल मनोरथ ही वापस लौटना पड़ा था। मुगल भी उससे कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं उठा सके थे। परन्तु भारतीय इतिहास में उसका अपना विशेष महत्त्व है और कालांतर में हल्दीघाटी के इस युद्ध को राजस्थान की थर्मापली की संज्ञा दी गई थी। यह खेद का विषय है कि इस युद्ध की सही तारीख तिथि के बारे में अब तक भ्रांतियाँ यथावत् बनी हुई हैं। अतः इस छोटे से लेख में इस ऐतिहासिक युद्ध की सही तिथि तारीख निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है कि इस संबंध में आगे कोई शंका-समाधान का स्थान ही नहीं रह जावे।

पश्चात्कालीन अनेक इतिहासकारों ने जो विभिन्न तिथि-तारीख दी है वे इतिहासकारों के काल क्रमानुसार इस प्रकार हैं—

(१) कवि रणछोड़ भट्ट के ऐतिहासिक काव्य अमर काव्य (ईसा की १७ वीं सदी का उत्तरार्द्ध) में श्लोक सं० ६५ के अनुसार "ज्येष्ठ

शुक्ला ७, १६३२ वि० (श्रावणादि) को यह युद्ध हुआ था। इस वर्ष में दो ज्येष्ठ मास हुए थे, यदि उक्त तिथि द्वितीय ज्येष्ठ मास की मान ली जावे तो उस दिन जून ३ १५७६ ई० तारीख थी। (महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रंथ, द्वितीय खण्ड, पृ० ३५)।

(२) राजस्थान के इतिहासकार टाड ने (राजस्थान०, आक्सफर्ड स०, १ पृ० ३९६) इस युद्ध की तिथि श्रावण शुक्ला ७ १६३२ वि० (तदनुसार बुधवार, अगस्त १ १५७६ ई०) दी है।

(३) बांकीदास ने भी इस युद्ध की तिथि श्रावण वदि ७, १६३२ वि० दी है जिसके अनुसार उस दिन जुलाई १८, १५७६ ई० होती है। (बांकीदास री ख्यात पृ० ९२ क्र० १०२६)।

(४) श्यामलदास ने वीर विनोद (२ पृ० १५१) में द्वितीय ज्येष्ठ सुदि २ १६३३ वि० (मई ३० १५७६ ई०) को यह युद्ध होना लिखा है। किस आधार पर यह तिथि दी है इसका कोई संकेत श्यामलदास ने नहीं किया है।

(५) डा० गोपीनाथ शर्मा ने अपने ग्रंथ 'मेवाड एण्ड मुगल एम्परर्स' (पृ० ९७) में अनगढ़ ही तारीख जून २१ १५७६ ई० दी है। किस प्रमाण के आधार पर उन्होंने यह तारीख मान्य की है इसका संकेत भी नहीं दिया है। यही तारीख श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक महाराणा प्रताप (पृ० ६८) में भी दी है। किन्तु उसमें भी आधार का कोई उल्लेख नहीं है।

उधर समकालीन फारसी इतिहासकारों में निजामुद्दीन ने अपने ग्रंथ तबकात् इ अकबरी में इस युद्ध की तारीख या माह तक का कोई उल्लेख नहीं किया है। मुल्ला बदायूनी ने स्वयं इस युद्ध में भाग लिया, परन्तु अपने इतिहास ग्रंथ में उसने भी इस युद्ध की कोई निश्चित तारीख नहीं देकर मोटे तौर से केवल सन् ९८४ हि० के रबि उल अव्वल के पूर्वार्द्ध में उसके होने का उल्लेख किया है। (मुंतखबुत्-तवारीख अं० अ० २ पृ० २३६) बदायूनी के इसी उल्लेख के आधार पर ही डा० गौरीशंकर हीराचन्द

उदयपुर राज्य के इतिहास' (१, पृ० ४३३) मे इस युद्ध का काल मोटे तौर पर केवल द्वितीय ज्येष्ठ सुदि १६३३ वि० (जून, १५७६ ई०) दिया है।

परन्तु राजकीय कागज-पत्रो तथा समकालीन घटनाओ के ब्यौरो आदि क आधार पर समकालीन इतिहासकार अबुल फजल ने अपने राजकीय इतिहास ग्रथ 'अकबरनामा' (अं० अ० ३ पृ० २४५) म इस युद्ध की तारीख अमरदाद ७, इलाही माह तीर इलाही सन् २१, (तदनुसार रबि उल्-अव्वल २०, ९८४ हि०=आषाढ बदि ७ १६३३ ई०=सामवार जून १८, १५७६ ई०) दी है। अपने इस इतिहास ग्रथ म उसने मेवाड पर इस मुगल आक्रमण सबधी जो ब्यौरेवार विवरण दिया है उसमे अयत्र भी स्थान-स्थान पर और भी निश्चित तारीखें दी है जिनसे उस घटनाक्रम म ही दी गई इस तारीख की उपेक्षा नही की जा सकती है। हल्दीघाटी क युद्ध मे मुगल सेना की विजय सूचना ता० माह १२ इलाही महीना तीर इलाही सन् २१ (तदनुसार शनिवार जून २३, १५७६ ई०) को अकबर के पास फतेहपुर सीकरी मे मिल गई थी।

आधुनिक काल के गणमान्य इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार (मिलिट्री हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० ७७) ने अबुल फजल द्वारा दी गई इसी तारीख को मान्य किया है। उसी प्रकार डॉ० रघुबीरसिंह (महाराणा प्रताप पृ० २२, २६) डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव (अकबर दी ग्रेट, १ पृ० २०६ ७) डा० राजीव नयन प्रसाद (राजा मानसिंह ऑफ आम्बेर पृ० ४५) आदि अय प्रमुख इतिहासकारो ने भी अबुल फजल द्वारा दी गई तारीख को ही मान्य किया है।

अन्तत इस सदभ म यह उल्लेख भी कर देना अत्यावश्यक है कि ईसाई कलेण्डर के सशोधन का निणय माच १५८२ ई० म ही लिया गया था और उसे अक्तूबर ५ १५८२ ई० स ही क्रियावित किया गया था जब उस दिन का सशोधित केलेण्डर के अनुसार अक्तूबर १५, १५८२ ई० घोषित किया गया। यो हल्दीघाटी के युद्ध की सही ईसवी तारीख निर्धारित करने क

संदर्भ में बाद में संशोधित किये गये ईसाई केलेण्डर की कोई बात उठाई भी नहीं जा सकती है।

ऐसी स्थिति में समकालीन प्रामाणिक इतिहासकार अबुल फजल द्वारा दी गई इस तारीख को ही स्वीकार कर सोमवार, जून १८ १५७६ ई० (आषाढ कृष्णा ७, १६३३ वि०) ही इस युद्ध की सही-तिथि तारीख मान्य की जानी चाहिये।

विशिष्ट आधार ग्रथ और सकेत परिचय

१ अ० ना० (अ० अ०)—अबुल फज़ल कृत 'अकबरनामा' का वेवरिज-कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग १ - ३ (बिब० इण्डिका)।

२ ओझा० उदयपुर० —गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ २।

३ ओझा० प्रताप०—गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत महाराणा प्रतापसिंह ।

४ ओझा० बीकानर०—गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत बीकानर का राज्य इतिहास भाग १ - २।

५ क्याम खा रासा—मुस्लिम कवि जान रचित क्याम खा रासा डा० दशरथ शर्मा अगरचन्द नाहटा और भवरलाल नाहटा द्वारा सपादित राजस्थान पुरातत्व मदिर १९५३।

६ खजाइनुल फुतूह—अमीर खुसरू कृत 'खजाइनुल-फुतूह' का मुहम्मद हबीब कृत अंग्रेजी अनुवाद।

७ जोधपुर राज्य की ख्यात०—जोधपुर राज्य री ख्यात, भाग १ - ४। (हस्तलिखित प्रति श्री रघुवीर लायब्रेरी सीतामऊ)।

८ टाड राजस्थान०—जेम्स टाड कृत "एनल्ज एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान भाग १ - ३ आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

९ तबकात० (अ० अ०)—निजामुद्दीन कृत 'तबकात-इ-अकबरी' का डे कृत अंग्रेजी अनुवाद, भाग २।

१० देवी०—मुंशी देवीप्रसाद।

११ नणसी०—मुहणोत नणसी की ख्यात भाग १ - २ नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी।

१२ नणसी० (प्रतिष्ठान)—मुहता नणसी री ख्यात भाग १ - ४। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान प्रकाशन।

१३ परगना०—मारवाड रा परगना री विगत' भाग १ - ३। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान प्रकाशन।

१४ बदायूनी० (अ० अ०)—अल-बदायूनी कृत मुन्तखबुत् तवारीख का लो कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग २ (बिब० इण्डिका)।

१५ बाबरनामा—बाबरनामा बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग १ - २।

१६ बांकीदास री ख्यात—प० नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित बांकीदास री ख्यात राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर १९५६।

१७ महाराणा—डा० रघुवीरसिंह कृत महाराणा प्रताप।

१८ महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ—डा० देवीलाल पालीवाल द्वारा सम्पादित महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ उदयपुर, सन् १९६९।

१९ मारात-इ-सिकन्दरी—मीरात-इ-सिकन्दरी का फजलुल्लाह लुत्फुल्लाह फरीदी कृत अंग्रेजी अनुवाद।

२० राज प्रशस्ति—रणछोड भट्ट कृत "राज प्रशस्ति महाका मृ' ।

२१ वश भास्कर— 'वश भास्कर ' सूयमल मिश्रग कृत, भाग १ - ४ ।

२२ वशावली—जयपुर रिकाडस (हिन्दी) भाग ७ । (श्री रघुबीर लायब्रेरी सीतामऊ प्रतिलिपि) ।

२३ वीर०—कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनाद' १—२ ।

२४ स०—सम्पादक ।

—

शुद्धि पत्र

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	आर	ग्रौर
७	१०	ग्रप्रनता	ग्रप्रसन्नता
१३ पा० टि०	२	बदशाह	बादशाह
१५	१३	बात की	बात को
१६	१	ग्रागे जा	जागे जो
२०	२५	भूपतराय का	भूपतराय को
२२	८	जव ता	जव तो
२८	४	हमला के	हमला को
३२	१३	सानगरो	सोनगरो
३५	१४	जब वह	जब वह
३७	२२	सिक्दरी	सिकदरी
४५	१४	बदी १०१	बदी १०[1]
५१	२०	लेक्रर	लेकर
६२	५	ग्रमरसिंह का	ग्रमरसिंह का
६७	११	माघासिंह	माघोसिंह
६७ पा० टि०	१	हाथी	हाथो
६९	१७	खूव	खूब
८१ पा० टि०	२	दस्तमखा १२ १५७७ ई०	दस्तमखा जून १२, १५७७ ई०
८५	१६	का रण	कारण
८९	८	मैदान म)	मैदान म
९०	१२	हाने	हान
९८	१२	का	का
११०	२८	मौमम	मौमम

११३		११-१२	'कुछ समय बाद अक्बर बादशाह	कुछ समय बाद अक्बर की सेना को महाराणा पर चढ़ा लाया लेकिन उपयुक्त घटना अक्बर बादशाह
११३		२३	पुल	पुन
१२६	पा० टि०	२	हल्दीघाटा	हल्दीघाटी
१२९		१५	बोलिया	वालिया बालतो

मनोहरसिंह राणावत

(जन्म १९४९ ई०) आपने उदयपुर विश्वविद्यालय उदयपुर से १९७१ ई० में एम० ए० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। वर्तमान में आप श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में कार्यरत हैं। आपकी मुगलकालीन भारत और राजस्थान इतिहास में विशेष रुचि है।

श्री मनोहरसिंह ने १९७१ ई० में 'जोधपुर हुकूमत री बही' मूल ग्रन्थ के सम्पादन में महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह का हाथ बटाया था। इसके अतिरिक्त इण्डियन काउन्सिल आफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली के प्रोजेक्ट में 'जोधपुर राज्य की ख्यात', भाग १ (प्रारम्भ से १,७८ ई०) का सम्पादन भी किया था। आपके प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ हैं —

१ भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट
२ शाहजहां के हिन्दू मनसबदार
मुंशी देवीप्रसाद कृत 'शाहजहां नामा'